ये भक्ताः शास्त्ररहिताः स्त्रीशूद्रद्विजबन्धवः।
तेषामुद्धारकः कृष्णः स्त्रीणामत्र विशेषतः॥

(श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचिता, श्रीसुबोधिनी १०/१/१७)

जो भगवद्भक्त स्त्रियाँ, शूद्र और पतित ब्राह्मण शास्त्ररहित हैं अर्थात् वेदबाह्य हैं, उनके उद्धारक श्रीकृष्ण हैं। यहाँ विशेष रूप से स्त्रियों के।

श्रीसूरदास जी ने इस बात की पुष्टि की -

यह लीला सब स्याम करत हैं, ब्रज जुवतिनि कैं हेत।
'सूर' भजै जिहिं भाव कृष्ण कौं, ताकौं सोई फल देत॥

नारी शक्ति विशेषांक

भागवत-धर्म की विशालता

(साध्वी सुश्री मुरलिका जी शर्मा)

संरक्षक

श्री राधा मान बिहारी लाल

प्रकाशक

राधाकान्त शास्त्री

मान मन्दिर सेवा संस्थान

गह्वर वन, बरसाना, मथुरा (उ. प्र.)

Website : www.maanmandir.org

E-mail : ms@maanmandir.org

Tel. : 9927338666, 9927194000

मूल्य - १० रूपये

नारी की व्यासरूपता

यदि देखा जाय तो अनादिकाल से भागवत वक्ता स्त्री ही रही है और स्त्रियों के ही कथा कहने पर अधिक रसास्वादन होता है क्योंकि वह निश्चिन्त मानस होती हैं। भागवत के वक्ता को निश्चिन्त मानस होना चाहिए अन्यथा रसास्वाद नहीं होगा, होगा भी तो अल्पमात्रा में।

यदा विष्णुः स्वयं वक्ता लक्ष्मीश्च श्रवणे रता।
तदा भागवतश्रावो मासेनैव पुनः पुनः॥
यदा लक्ष्मीः स्वयं वक्त्री विष्णुश्च श्रवणे रतः।
मासद्वयं रसास्वादस्तदातीव सुशोभते॥

(श्रीमद्भागवत, स्कन्दपुराणान्तर्गत माहात्म्य ३/३५,३६)

जिस समय स्वयं भगवान् नारायण भागवत कथा के वक्ता होते हैं और लक्ष्मी जी प्रेमपूर्वक श्रवण करती हैं तो कथा एक मास तक चलती है एवं जब लक्ष्मी जी वक्ता होती हैं और भगवान् नारायण श्रोता बनकर सुनते हैं, तब भागवत-कथा का रसास्वादन दो माह तक होता है; लक्ष्मी जी के व्यासत्व में कथा बड़ी सुन्दर और बहुत ही रुचिकर होती है।

ऐसा क्यों ?

अधिकारे स्थितो विष्णुर्लक्ष्मीर्निश्चिन्तमानसा।
तेन भागवतास्वादस्तस्या भूरि प्रकाशते।।

(श्रीमद्भागवत, स्कन्दपुराणान्तर्गत माहात्म्य ३/३७)

इसका समाधान यह है कि भगवान् विष्णु तो अधिकारारूढ़ हैं, उन्हें जगत् के पालन की चिन्ता करनी पड़ती है परन्तु लक्ष्मीजी इन झंझटों से अलग हैं, अतः उनका हृदय निश्चिन्त है इसी से लक्ष्मी जी के मुख से भगवत्कथा का रसास्वादन अधिक प्रकाशित होता है।

श्रीमानमन्दिर की बेवसाइट www. maanmandir. Org के द्वारा आप बाबाश्री के प्रातःकालीन सत्संग का ८.३० से ९.३० तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६.३० से ७.३० तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं।

संपादकीय

वैदिककाल हो या पौराणिक सर्वत्र भारतीय संस्कृति में नारी उत्कर्ष का दर्शन होता रहा है। आज की भौतिक चकाचौंध में कुत्सित भावनाओं के कारण भले ही नारी–गरिमा पर कोई उँगली उठा ले परन्तु जगज्जननी होने के साथ–साथ नारी जीवन उत्थान का मूल है। वर्तमान काल में स्त्रियों के भागवत कथा वाचन का बहुत अधिक विरोध किया जा रहा है, जिसमें प्रमुख तर्क यह दिया जाता है कि कथा काल में रजोधर्म होने के कारण व्यासासन पर बैठने की वे पूर्णतया अनधिकारिणी हैं परन्तु आलोचकों को इस महत्वपूर्ण तथ्य का विचार करना चाहिए कि श्री मद्भागवत भक्तिपरक ग्रन्थ है, जो भागवत धर्म का प्रस्तुतीकरण करता है, यह स्मृति ग्रन्थ नहीं है जिसमें बाहरी शौचाचार का पूरा ध्यान रखा जाता है। वैष्णव अथवा भागवत धर्म में तो भगवान राम ने दण्डकारण्य के तपस्यारत सिद्ध ऋषि–मुनियों को त्यागकर सर्वप्रथम अत्यधिक निम्नवर्णा भीलनी शबरी के दाँत से काटे हुए बेर बड़े प्रेम से खाए थे। वैष्णव धर्म में स्त्री क्या नपुंसक भी भक्ति संपन्न होने पर भगवान् का परम प्रिय है और भक्तिहीन ब्रह्मा भी चींटी से अधिक नगण्य हो जाते हैं।

भागवत धर्म में स्त्री तो क्या पक्षियों में भी अत्यन्त निम्न कोटि का चाण्डाल पक्षी कौआ कागभुशुण्डि जी भी कथावाचक बन सकते हैं, जिनके पास भगवान के पार्षद गरुड़ जी भी अपने मोह की निवृत्ति हेतु कथा श्रवण के लिए पधारे थे। इसी प्रकार वैष्णव शिरोमणि देवाधिदेव महादेव जी भी जब सती के देह त्याग से उनकी विरहाग्नि में तप्त होकर वन–वनांतर में भटक रहे थे तो उन्हें भी इस विरहानल के शमन हेतु इस काकवक्ता की छत्र छाया में बैठकर उसके मुख से कथामृत का पान करना पड़ा था। इसलिए भागवत कथा वक्ता की एकमात्र योग्यता तो यही है कि वह अतिनि:स्पृह हो, भगवान के अनन्याश्रित हो। स्त्री–पुरुष आदि लिंगभेद अथवा अन्य प्रकार के भेदों का भागवत कथा वक्ता की पात्रता हेतु कोई स्थान नहीं है।

हमें अपनी संस्कृति से अलग हटकर नारी–गरिमा को न्यून करने का अधिकार नहीं है। इसी अवधारणा के हितार्थ प्रस्तुत अंक 'नारी शक्ति विशेषांक' के रूप में प्रस्तुत है।

–राधाकान्त शास्त्री

भागवत-धर्म की विशालता

(ब्रजबालिका साध्वी सुश्री मुरलिका जी शर्मा, मान मंदिर)

भोले-भाले अज्ञानी जन भी सुगमता से भगवत्प्राप्ति कर सकें, इसके लिये स्वयं श्रीभगवान् ने अपने मुख से जो मार्ग बताया है, वही "भागवत-धर्म" है -

ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये।
अञ्जः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान् हि तान्॥

(श्रीमद्भागवत ११/२/३४)

भागवत-धर्म की विशेषता यह है कि वह **अधिकारी-अनधिकारी** का विचार न करके सबके ऊपर कल्याण की वर्षा करता है जबकि श्रौत-स्मार्त आदि धर्मों में अधिकारभेद का प्राधान्य है और उन धर्मों का अनुष्ठान अधिकार सम्पत्ति के बिना निष्फल हो जाता है।

अतः जीवमात्र के कल्याणार्थ भगवान् की करुणा-शक्ति ही भागवत-धर्म के रूप में अवतीर्ण हुई है। अधिकारियों को दरबार में बुला लेना सगुण भगवत्ता की सार्थकता नहीं है अपितु दीन-परिपालन में ही भगवत्ता सफल होती है -

रघुबर! रावरि यहै बड़ाई।
निदरि गनी आदर गरीब पर, करत कृपा अधिकाई॥
थके देव साधन करि सब, सपनेहु नहिं देत दिखाई।
केवट कुटिल भालु कपि कौनप कियो सकल सँग भाई॥
मिलि मुनिबृंद फिरत दंडक बन, सो चरचौ न चलाई।
बारहि बार गीध सबरी की, बरनत प्रीति सुहाई॥
स्वान कहे तें कियो पुर बाहिर, जती गयंद चढ़ाई।
तिय-निंदक मतिमंद प्रजा रज, निज नय नगर बसाई॥
यहि दरबार दीन को आदर, रीति सदा चलि आई।
दीनदयालु दीन 'तुलसी' की, काहु न सुरति कराई॥

(तुलसी विनय-पत्रिका - १६५)

बासुदेव की बड़ी बड़ाई।
जगतपिता, जगदीस, जगतगुरु, भक्तनि की सहत ढिठाई॥
भृगु कौ चरन राखि उर ऊपर, बोले बचन सकल-सुखदाई।
सिव-बिरंचि मारन कौं धाए, यह गति काहू देव न पाई॥
बिनु बदलैं उपकार करत हैं, स्वारथ बिना करत मित्राई।
रावन अरि कौ अनुज बिभीषन, ताकौं मिले भरत की नाई॥
बकी कपट करि मारन आई, सो हरि जू बैकुंठ पठाई।
बिनु दीन्हें ही देत सूर-प्रभु, ऐसे हैं यदुनाथ गुसाई॥

(सूर विनय-पत्रिका - ४)

अधिकार-परीक्षा के बिना ही अपनी कृपावीक्षा से जीव को निहाल कर देने के कारण ही 'भागवत-धर्म' सब धर्मों का मुकुटमणि बोला गया। इसके अवलम्बन से महापतित भी सुर-नर-मुनियों के संपूज्य हो जाते हैं।

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकङ्कायवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥

(श्रीमद्भागवत २/४/१८)

किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कंक, यवन, खस आदि अन्त्यज जाति के तथा अन्य पापी भी भगवदाश्रित भक्तों के आश्रय से शुद्ध हो जाते हैं, ऐसे करुणामय शील-सामर्थ्यवान भगवान् को हम नमस्कार करते हैं।

'भक्ता इव भगवत्सेवायोग्या भवन्ति।'

(श्रीवल्लभाचार्यजीकृता 'श्रीसुबोधिनी')

ऐसे अति अधम लोग भी भगवद्-भागवत शरणागति से भक्तों की तरह भगवान् की सेवा के योग्य हो जाते हैं।

इसका उदाहरण श्रीभक्तमाल जी में श्रीनाभा जी ने दिया है -

जंगली देश के लोग सब श्रीपरशुराम किय पारषद।

(श्रीभक्तमाल, छप्पय - १३७)

श्रीपरशुरामदेवाचार्य जी ने जंगली असभ्यजनों को हरिभक्ति का उत्तम उपदेश देकर उन्हें भगवत् पार्षदों के तुल्य पवित्र एवं पूज्य बना दिया।

इसीलिये श्रीतुलसीदास जी ने मानस जी में लिखा है -

मज्जन फल पेखिअ ततकाला। काक होहिं पिक बकउ मराला॥
सुनि आचरज करै जनि कोई। सतसंगति महिमा नहिं गोई॥
बालमीक नारद घटजोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड - ३)

श्रीब्रह्माजी ने भी श्रीमद्भागवत में कहा -

ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां
स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः।
यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षा-
स्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये॥

(श्रीमद्भागवत २/७/४६)

जिन्हें भगवान् के प्रेमी भक्तों जैसा स्वभाव बनाने की शिक्षा मिली है, वे स्त्री, शूद्र, हूण, शबर (भीलादि) व अन्य पापात्मा, पशु-पक्षी आदि की योनि में होने पर भी दैवी माया को जान जाते हैं और भवसागर के पार चले जाते हैं।

इसका प्रमाण सभी महापुरुषों ने दिया है कि भागवत धर्म का अवलम्बन लेने से अनेकानेक पतितों ने परागति प्राप्त की।

पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना॥
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते॥

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - १३०)

हरि जस गावत सब सुधरे।
नीच अधम अकुलीन बिमुख खल कितने गुनौ बुरे॥
नाऊ छीपा जाट जुलाहौ सनमुख आइ जुरे।
तिन तिन कौं सुख दियौ साँवरे नाहिन बिरद दुरे॥
बिबस असावधान सुत के हित द्वै अच्छर उचरे।
'बिहारीदास' प्रभु अजामील से पतित पवित्र करे॥

(श्रीबिहारिन देव जी)

को को न तर्‌यो हरि-नाम लिऐं।
सुवा पढ़ावत गनिका तारी, ब्याध तर्‌यो सर-घात किऐं॥
अंतर-दाह जु मिट्यौ ब्यास कौ, इक चित ह्वै भागवत किऐं।
प्रभु तैं जन, जन तैं प्रभु बरतत, जाकी जैसी प्रीति हिऐं॥
जौ पैं कृष्ण भक्ति नहिं जानी, कहा सुमेरु-सम दान दिऐं।
'सूरदास' बिमुख जो हरि तैं, कहा भयौ जुग कोटि जिऐं॥

(श्रीसूरदास जी)

इसलिए कहा गया है -

अतिपातकयुक्तोऽपि ध्यायेन्निमिषमच्युतम्।
भूयस्तपस्वी भवति पंक्ति पावन पावनः॥

'अत्यन्त पातकों से युक्त होने पर भी यदि मनुष्य पलभर के लिए श्रीअच्युत का चिन्तन कर ले तो वह फिर पंक्ति पावनों को भी पवित्र करने वाला तपस्वी हो जाता है।'

अतः यह सर्वसम्मत है कि भागवत-धर्म अधिकारी-निरपेक्ष है-देवता हो या दानव, मनुष्य हो या पशु, ब्राह्मण हो या शूद्र, स्त्री हो या पुरुष, बालक हो या वृद्ध, धनी हो या दरिद्र, दुराचारी हो या सदाचारी, मूर्ख हो या पण्डित, सभी इस धर्म के अधिकारी हैं -

व्याधास्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का
जातिर्वा विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्।
कुब्जायाः किं वामरूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनम्
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैः भक्तिप्रियो माधवः॥

'व्याध का क्या अच्छा आचरण था, ध्रुव जी की क्या अवस्था थी, गजेन्द्र के पास क्या विद्या थी, सुदामा जी के पास कौन-सा धन था, कुब्जा का क्या रूप था, विदुर जी का क्या वंश था और उग्रसेन जी के पास क्या बल था अर्थात् कुछ भी नहीं किन्तु फिर भी इन सबके ऊपर भगवान् प्रसन्न हुए-इससे सिद्ध हुआ कि केवल उत्तम आचरण, धन, बल, विद्या, रूप आदि गुणों से भगवान् प्रसन्न नहीं होते हैं। वे केवल भक्ति से प्रसन्न होते हैं क्योंकि उन्हें भक्ति ही प्रिय है।'

जबकि श्रौत-स्मार्त धर्म में उत्तम आचरण, उत्तमकाल, पवित्र-स्थान, न्यायोपार्जित वस्तु.....आदि की अपेक्षा होती है किन्तु भागवत-धर्म में यह सब कुछ अपेक्षित नहीं है।

श्रीसूरदास जी के वचन -

बड़ी है राम-नाम की ओट।
सरन गएँ प्रभु काढ़ि देत नहिं, करत कृपा कौ कोट॥
बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ौ को छोट?
सूरदास पारस के परसैं मिटति लोह की खोट॥

अथवा

सोइ भलौ जो रामहि गावै।
स्वपचहु स्रेष्ट होत पदसेवत बिनु गुपाल द्विज जनम न भावै॥
बाद-बिबाद जज्ञ-ब्रत-साधन, कितहूँ जाइ जनम डहकावै।
होइ अटल जगदीस-भजन मैं, अनायास चारिहु फल पावै॥
कहूँ ठौर नहिं चरनकमल बिनु, भृंगी ज्यौं दसहुँ दिसि धावै।
सूरदास प्रभु संत-समागम, आनँद अभय निसान बजावै॥

जिस प्रकार किसी धनिक के बालक को अपने घर में प्रवेश करते समय पहरेदारों के द्वारा कोई अटकाव उपस्थित नहीं होता है, उसी प्रकार भागवत धर्मानुसार भजन करने वाले भक्त के लिए वैदिक कर्मो की अर्गला आड़े नहीं आती है क्योंकि -

भक्ति-छत्र जिहि सिर फिरै ताकौ राज प्रमान।
कर्म-धर्म किंकर भये, सेवत रहैं सुजान॥

(श्रीध्रुवदास जी)

वरनाश्रम के धर्म को भागवत धर्म दिवान।

(श्रीबिहारिन देव जी)

जिसको भागवत धर्म में विश्वास होता है, विधि-निषेध उसके दास बन जाते हैं। इसीलिये भक्तों को कर्मो का विधि-निषेध बाधक नहीं होता है। जो भागवत धर्म का सेवन करते हैं उनके स्वधर्म कर्म भी दीन सेवक के समान होते हैं। भक्तों के सम्मुख खड़े रहने की भी सामर्थ्य उनमें नहीं होती है तो फिर बाधक किस प्रकार हो सकते हैं।

स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित्।
सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः॥

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड ७१/१)

सदा निरन्तर श्रीभगवान् का स्मरण करो, यह विधि है और कभी भी उनको मत भूलो, यह निषेध है। भगवत्स्मरण रूप विधि व भगवद्-विस्मरण रूप निषेध के अन्यान्य समस्त विधि-निषेध किंकर हैं।

श्रुति और स्मृति रूपी दो नेत्रों के अभाव में जो अंधे हैं वे भी भावबल से हरिभजन में दौड़ लगाते हुए भी गिरते नहीं अर्थात् उन्हें कोई बाधा नहीं होती।

यह भागवत धर्म अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तो है ही, गोपनीय, विशुद्ध और दुर्बोध होने से स्वयं श्री भगवान् के मुख से ही प्रकट हुआ है।

अजामिल-प्रसंग में धर्मराज ने अपने दूतों से कहा -

धर्मं तु साक्षाद्भगवत्प्रणीतं न वै विदुर्ऋषयो नापि देवाः।
न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्याः कुतश्च विद्याधरचारणादयः॥

(श्रीमद्भागवत ६/३/१९)

'स्वयं श्रीभगवान् ने ही धर्म की मर्यादा का निरूपण किया है। उसे न तो ऋषि जानते हैं और न देवता या सिद्ध ही। ऐसी स्थिति में मनुष्य, विद्याधर, चारण और असुरादि तो जान ही कैसे सकते हैं।'

स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः।
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम्॥
द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः।
गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वामृतमश्नुते॥

(श्रीमद्भागवत ६/३/२०-२१)

'भगवान् के द्वारा निर्मित भागवत धर्म परम शुद्ध और अत्यन्त गोपनीय है। उसे जानना बहुत ही कठिन है। दूतो! भागवत धर्म का रहस्य हम बारह व्यक्ति ही जानते हैं-ब्रह्मा जी, देवर्षि नारद, भगवान् शंकर, सनत्कुमार, कपिलदेव, स्वायम्भुव मनु, प्रह्लाद जी, जनक जी, भीष्मपितामह, बलि जी, शुकदेव जी और मैं (धर्मराज)।

'विजानीम एव न तु निजस्मृत्यादौ स्पष्टं कथयाम इति भावः। गुह्यं लोकमर्यादारक्षणाय गोप्यम्। किञ्च - साधारणजनदुर्बोधं च तत्र हेतुः-विशुद्धं न ह्यशुद्धं शुद्धं ज्ञातुमर्हन्ति गुह्यत्वे हेतुविशेषोऽयमिति।' (श्रीवंशीधरजीकृतो भावार्थदीपिकाप्रकाशः)

हम सब जानते हैं किन्तु उसका हमने स्व-स्मृत्यादि शास्त्रों में स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं किया है क्योंकि वह अत्यन्त गोपनीय है, इसलिए लोकमर्यादा की रक्षा के लिए उसे गोप्य रखा है। साधारण लोगों के लिए दुर्बोध है, दुर्बोध इसलिए है क्योंकि अशुद्ध अन्तःकरण वाले शुद्ध वस्तु को नहीं जान सकते, इसीलिये उसे गोपनीय रखा है।

भागवत-धर्म वह मार्ग है जहाँ अन्धा भी स्खलन, पतन के भय से सर्वथा मुक्त होकर दौड़ सकता है।

यानास्थाय नरो राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित्।
धावन् निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह॥

(श्रीमद्भागवत ११/२/३५)

सबसे प्रथम बात भागवत-धर्म जीव मात्र का धर्म है। यह इस धर्म की महत्ता है कि बड़े-बड़े विघ्न भी भागवत-धर्मावलम्बी को चलायमान नहीं कर सकते हैं। यह वो सुगम राजपथ है, जिस पर अन्धाव्यक्ति भी स्खलन-पतन के भय से मुक्त होकर दौड़ते हुए जा सकता है।

नेत्रनिमीलन से तात्पर्य जिसे श्रुति-स्मृति दोनों का ही ज्ञान नहीं है, ऐसी स्थिति में उससे यदि किसी विधि-विधान का अतिक्रमण भी हो जायेगा तो भी दोष न लगकर उसे फलप्राप्ति ही होगी।

किन्तु बिडम्बना है कि आज के अनेकधर्मविभ्रान्त संकीर्ण विचारक भागवत धर्म की विशालता को वैदिक मर्यादाओं के बन्धनों में बांधकर संकुचित करने में प्रयासरत् हैं परन्तु उनका प्रयास अनादिकाल से चली आ रही भागवत धर्म की प्रकाशमय महामहिमा को आवृत नहीं कर पायेगा।

विधि-निषेध के बंध हैं, और धर्म मृग जानि।
केहरि पुनि बिनु बंधनहि, भगवत धर्महि जानि ॥

(श्रीध्रुवदास जी कृत 'बयालीस लीला' भजनशत ४९)

अन्यान्य सभी धर्म, वैदिक विधि-निषेधात्मक बन्धनों से बँधे हुए सामान्य पशुओं की भाँति हैं किन्तु भागवत-धर्म सिंह की भाँति सदा निर्बन्ध है।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता २/४०)

इस भागवत-धर्म का स्वल्प अनुष्ठान भी संसाररूप महान भय से मुक्त कर देता है और न ही इससे कोई दोष होता है।

अथ निर्गुणश्रवणकीर्त्तनादि - भक्तियोगस्य माहात्म्यमाह-नेहेति। इह भक्तियोगेऽभिक्रमे आरम्भमात्रे कृतेऽप्यस्य भक्तियोगस्य नाशो नास्ति, ततः प्रत्यवायश्च न स्यात्। यथा कर्मयोगे आरम्भं कृत्वा कर्माननुष्ठितवतः कर्मनाशप्रत्यवायौ स्यातामिति भावः। ननु तर्हि तस्य भक्त्यनुष्ठातुः कामस्य समुचितभक्त्यकरणात् भक्तिफलं तु नैव स्यात्, तत्राह-स्वल्पमिति। अस्य धर्मस्य स्वल्पमप्यारम्भसमये या किञ्चिन्मात्री भक्तिरभूत् सापीत्यर्थः, महतो भयात् संसारात् त्रायत एव। यन्नामसकृच्छ्रवणात्, पुल्कसोऽपि विमुच्यते संसारात् इत्यादि श्रवणात्, अजामिलादौ तथा दर्शनाच्च। न ह्यङ्गोपक्रमे ध्वंसो मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि। मया व्यवसितः सम्यङ्निर्गुणत्वादनाशिषः॥

(श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीठाकुरकृता 'सारार्थवर्षिणी')

यहाँ 'नेह' इत्यादि के द्वारा श्रवण-कीर्तनरूप निर्गुणा भक्ति की महिमा का वर्णन कर रहे हैं। भगवान् बोले - "इस भक्तियोग के आरम्भमात्र करने से भी इसका नाश नहीं होता है, अतः नष्ट होने का कोई दोष भी नहीं होता है जबकि कर्मयोग के अनुष्ठान का आरम्भ करने पर यदि वह अनुष्ठान पूर्ण न हो तो किये गये कर्म का नाश हो जाता है और दोष भी लगता है।" परन्तु भागवत धर्म में भगवान् श्रीकृष्ण 'स्वल्पं' इत्यादि कह रहे हैं अर्थात् इस धर्म के आरम्भ में थोड़ी-सी भी की गई भक्ति नष्ट नहीं होगी और वह उसे इस संसार से पार कर देगी।

अजामिल आदि के चरित्र इसके प्रमाण हैं।

श्रीमद्भागवत (६/१६/४४) में भी कहा गया है - "एक बार भगवान् का नाम श्रवण करने से चाण्डाल भी महान भयरूप संसार से मुक्त हो जाता है।"

अन्यत्र भी (श्रीमद्भागवत ११/२९/२) भगवान् ने कहा-"हे उद्धव! मेरे द्वारा इस धर्म का निर्गुणत्व यथार्थरूप में निर्णीत हुआ है, अतः त्रुटि आदि के द्वारा मेरे श्रवण-कीर्तनरूप शुद्धा भक्ति के लिए किये गए इस निष्काम धर्म के अनुष्ठान का अंशमात्र भी नष्ट होने की सम्भावना नहीं है।"

जितमजित तदा भवता यदाऽऽह भागवतं धर्ममनवद्यम्।
निष्किञ्चना ये मुनय आत्मारामा यमुपासतेऽपवर्गाय॥

(श्रीमद्भागवत ६/१६/४०)

स्वयं भगवान् के श्रीमुख से कथित भागवत धर्म अनवद्य अर्थात् विषमता के दोष से रहित सर्वोच्च धर्म है।

विषममतिर्न यत्र नृणां त्वमहमिति मम तवेति च यदन्यत्र।
विषमधिया रचितो यः स ह्यविशुद्धः क्षयिष्णुरधर्मबहुलः॥

(श्रीमद्भागवत ६/१६/४१)

यह धर्म - "यह मैं", "यह मेरा", "यह तू", "यह तेरा", "यह स्त्री", "यह पुरुष" आदि दुराग्रहों से रहित सर्वथा शुद्ध है। अन्य जिस धर्म में इस प्रकार का दुराग्रह है, वह अशुद्ध, नष्ट होने वाला अधर्म ही है।

न व्यभिचरति तवेक्षा यया ह्यभिहितो भागवतो धर्मः।
स्थिरचरसत्त्वकदम्बेष्व पृथग्धियो यमुपासते त्वार्याः॥

(श्रीमद्भागवत ६/१६/४३)

भागवत धर्म में तो अचर-सचर भी समान हैं फिर स्त्री-पुरुष भेद सम्बन्धी सिद्धान्त भागवत धर्म के सर्वथा विरुद्ध हैं।

यन्नाम सकृच्छ्रवणात् पुल्कसकोऽपि विमुच्यते संसारात्॥

(श्रीमद्भागवत ६/१६/४४)

एक बार भगवन्नाम श्रवण मात्र से चाण्डाल भी पवित्र हो जाता है, यह भागवत धर्म की सामर्थ्य है।

यह सामर्थ्य तो न वैदिक धर्म में है, न स्मार्त धर्म में। वेद और स्मृति के धर्म तो स्त्री, शूद्र को एक ओर करके चलते हैं।

किन्तु भागवत धर्म में इस भेद दृष्टि के लिए कोई स्थान नहीं है।

भागवत-धर्म सम्मत श्रीभगवान् का मत

भगवान् राम के वचन -

पुरूष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - ८७)

पुरुष हो चाहे नपुंसक हो चाहे स्त्री हो अथवा चर-अचर कोई भी जीव हो जो भी कपट छोड़कर सर्वभाव से मुझे भजे वही मुझे परमप्रिय है।

अर्थात् शूद्र, स्त्री, अन्त्यज, पापी, नपुंसक इनको श्रौत यज्ञ याग, वेद और ज्ञान का अधिकार नहीं है, पर मेरी भक्ति का अधिकार इन सबको भी है। भक्ति में स्त्री-पुरुष सम्बन्धी या ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र एवं चाण्डाल-पापयोनि-सम्बन्धी कोई भेद शेष नहीं रहता।

पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जाति नामाश्रमादयः।
न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम्॥

(अध्यात्मरामायण ३/१/२)

पुरुषत्व-स्त्रीत्व का भेद अथवा जाति, नाम और आश्रम-ये कोई भी मेरे भजन के कारण नहीं हैं। उसका कारण तो एकमात्र मेरी भक्ति ही है।

भगवान् श्रीकृष्ण के वचन -

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।

(श्रीमद्भगवद्गीता ९/३२)

पापयोनि होते हुए भी स्त्री, वैश्य और शूद्र सर्वथा मेरे शरणागत होकर मुझे प्राप्त कर लेते हैं।

श्रीवेदव्यास जी के वचन -

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्येऽन्त्यजास्तथा।
हरिभक्तिं प्रपन्ना ये ते कृतार्था न संशयः॥
हरेरभक्तो विप्रोऽपि विज्ञेयःश्वपचाधिकः।
हरिभक्तः श्वपाकोऽपि विज्ञेयोब्राह्मणाधिकः ॥

(पद्मपुराण, क्रियायोग १६/२-३)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य अन्त्यज आदि जो भी हरिभक्ति के प्रपन्न होता है, वह निःसन्देह कृतार्थ हो जाता है। भगवद्विमुख ब्राह्मण से भगवद्भक्त श्वपच को अधिक जानना चाहिए।

भगवत्स्वरूप आचार्यों एवं महापुरुषों का भागवत-धर्म सम्मत मत

श्रीरामानन्दाचार्य जी के वचन -

सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणः सदा शक्ता अशक्ता अपि नित्यरङ्गिणः।
अपेक्ष्यते तत्र कुलं बलं च नो न चापि कालो नहि शुद्धता च ॥

(वैष्णव मताब्ज भास्कर ९९)

संसार में सबको भगवच्छरणागति का नित्य अधिकार है, चाहे वह समर्थ हो अथवा असमर्थ क्योंकि भगवच्छरणागति में न श्रेष्ठ कुल की अपेक्षा है न ही किसी प्रकार के बल की, वहाँ न उत्तम काल की आवश्यकता है और न किसी प्रकार की शुद्धि अपेक्षित है। प्राणीमात्र शुचि-अशुचि सभी अवस्थाओं एवं सभी काल में भगवच्छरणागति ग्रहण कर सकता है।

श्रीशंकराचार्य जी के वचन -

अयं उत्तमोऽयं अधमो जात्या रूपेण सम्पदा वयसा।
श्लाघ्योऽश्लाघ्यो वेत्थं न वेत्ति भगवान् अनुग्रहावसरे।।

(प्रबोधसुधाकर २५२)

कृपा करते समय भगवान् यह नहीं विचारते कि जाति, रूप, धन और आयु से यह उत्तम है या अधम, स्तुत्य है या निन्द्य।

श्रीवल्लभाचार्य जी के वचन -

अधुना ह्यधिकारास्तु सर्व एव गताः कलौ।
कृष्णश्चेत् सेव्यते भक्त्या कलिस्तस्य फलाय हि।।

(तत्वार्थदीपनिबन्ध, शास्त्रार्थप्रकरण १९)

अब कलियुग में सभी अधिकार समाप्त हो गए हैं। इसलिए यदि भक्ति पूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा की जाये तो यह कलियुग श्रीकृष्ण की सेवा करने वाले भक्त के लिए फलदायक सिद्ध होगा।

कालवशादेव अधिकाराः निवृत्ताः न साधनैः कर्तुं शक्यन्ते, ननु एवं सति मुख्यभक्तिमार्गेऽपि समः समाधिः इति चेत्, तत्र आह कृष्णश्चेत् सेव्यते इति, अवतीर्णो भगवान् सर्वमुक्त्यर्थमिति प्रमेयबलेनैव फलिष्यतीति स्वाधिकाराभावेऽपि ततः फलं भविष्यति इति अर्थः, चेद् इति सेवायां दुर्लभत्वम् उक्तम्, भक्त्या न तु विहितत्वेन, कलिस्तस्य इति, कालस्तु अनुगुण एव इति अर्थः, "कलौ तद् हरिकीर्तनाद्" (भा- १२/३/५२) इति वाक्यात्, अतो अधिकारेण अनधिकारेण वा कृष्णभजनं कर्तव्यम् इति सिद्धम्।।

कठिन कलिकाल के कारण सभी मनुष्य सदाचारविहीन हो गये हैं और सर्वदा निषिद्धाचाररत् हैं।

सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नर नारी।।

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - ९७)

इसलिए वह ज्ञान-कर्मादि के अधिकारी नहीं रहे, किन्तु यदि वह भी श्रीकृष्णभक्ति करते हैं तो कलियुग उनके लिए फलदायी सिद्ध होगा। किस तरह कृष्ण-भक्ति करें?

"कलौ तद् हरिकीर्तनाद्" (भा- १२/३/५२)

'कलियुग में कीर्तनादिक भक्ति से भगवत्प्राप्ति होती है।'

काकभुशुण्डि जी ने भी मानस जी में कलियुग के धर्म गिनाकर अन्तिम में गरुड़ जी से यही कहा है -

सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार।
गुनउँ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार॥
कृतजुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग॥
कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा ॥
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना ॥
सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि ॥
सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं ॥
कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास ॥

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड १०२-०३)

श्रीहरिराम व्यास जी के वचन –

हरि के नाम भरोसैं रहियै।
साधन विधि व्यौहार न कलियुग, निसि-दिन हरि हरि कहियै॥

यही श्रीमद्भागवत में श्रीशुकदेव जी का अन्तिम मत है –

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥
कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥

(श्रीमद्भागवत १२/३/५१-५२)

कलियुग में केवल भगवान् श्रीकृष्ण का संकीर्तन करने मात्र से ही समस्त आसक्तियाँ छूट जाती हैं और श्रीकृष्ण की प्राप्ति हो जाती है।

यही भगवान् श्रीकृष्ण का गीता में अन्तिम मत है –

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १८/६५-६६)

मुझमें मन वाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करने वाला हो और मुझको प्रणाम कर। ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त होगा।

सभी धर्मो को छोड़कर एकमात्र मेरा आश्रय ग्रहण कर, धर्मत्याग से जो पाप लगेगा उससे मैं तुझे मुक्त करूँगा।

भगवान् श्रीकृष्ण कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम् समर्थ हैं इसलिए वे कृष्णभक्ति करने वाले अनधिकारी जीवों का भी कल्याण कर देते हैं क्योंकि भगवान् का प्राकट्य सभी जीवों के कल्याण के लिए ही होता है। श्रीमद्भागवत में शुकदेव जी ने कहा है –

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥

(श्रीमद्भागवत १०/३३/३७)

गोपीजनों ने कहा –

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्यलं विश्वमङ्गलम्।

(श्रीमद्भागवत १०/३१/१८)

यह अवतार विश्वमंगल के लिए हुआ अतः यहाँ तो कान्हा भंगी के साथ भी क्रीड़ा हुई है। श्रीब्रह्मा जी ने भी कहा –

तद्वा इदं भुवनमङ्गलमङ्गलाय।
ध्याने स्म नो दर्शितं त उपासकानाम्।

(श्रीमद्भागवत ३/९/४)

निराकार सत्ता का साकार होने का कारण ही था –

भुवनमंगलमंगलाय।

भगवान् का यह रूप सम्पूर्ण संसार के मंगल के लिए प्रकट हुआ फिर भुवनमंगल में क्या स्त्री-शूद्र का मंगल नहीं है?

अतः श्रीवल्लभाचार्य जी का अन्तिम मत यही है –

"कलौ तद् हरिकीर्तनाद्" (भा. १२/३/५२) इति वाक्यात्, अतो अधिकारेण अनधिकारेण वा कृष्णभजनं कर्तव्यम् इति सिद्धम्॥

अधिकार होने पर या अधिकार न होने पर भी भगवान् श्रीकृष्ण का भजन करना कर्तव्य है, यह सिद्ध हुआ।

भगवान् अन्तरात्मदृक् हैं, वे सभी के अन्तर्भाव को जानते हैं, जहाँ भावनाओं में शुद्धता होती है, उस भक्त पर वह अवश्य कृपा करते हैं। श्रीसूरदास जी के वचन –

गोबिंद प्रीति सबनि की मानत।
जिहिं जिहिं भाइ करत जन सेवा, अन्तर की गति जानत॥
सबरी कटुक बेर तजि, मीठे चाखि, गोद भरि ल्याई।
जूठनि की कछु संक न मानी, भच्छ किए सत भाई॥
संतत भक्त मीत हितकारी स्याम बिदुर कैं आए।
प्रेम-बिकल, अति आनंद उर धरि, कदली-छिलुका खाए॥
कौरव-काज चले रिषि सापन, साक-पत्र सु अघाए।
सूरदास करुना-निधान प्रभु, जुग-जुग भक्त बढ़ाए॥

श्रीविट्ठलनाथ जी ने भी कहा है –

सदा सर्वात्मभावेन स्मर्तव्यः स्वप्रभुस्त्वया।
यादृशा तादृशा एव महान्तस्ते पुनन्ति नः॥

सदा सर्वात्मभाव से एक प्रभु श्रीकृष्ण का ही स्मरण करना चाहिए। हम लोग चाहे जैसे भी हों, वे महान हैं, हम लोगों को पवित्र करेंगे ही।

महात्माओं ने भी कहा कि शास्त्र बहुत हैं, आयु अल्प है, इसीलिए सभी शास्त्रों-धर्मो के सार श्रीकृष्ण का भजन करो, यही चतुरता है।

श्रुति, पुरान-विधि, स्मृति बहु, अलप आयु यह काल।
लेहु सार गहि हंस जिमि, बिमल भजन-नंदलाल।।

(श्रीध्रुवदास जी कृत 'बयालीस लीला' भजनशत ५१)

कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर॥

(रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड - ६)

एहिं कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा।।
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।।

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - १३०)

हरि, हरि, हरि, सुमिरौ सब कोइ। नारि-पुरुष हरि गनत न दोइ।।
हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोइ। हरि के गुन गावत सब लोइ।।
राव-रंक हरि गनत न दोइ। जो गावहि ताकी गति होइ।।

अथवा

है हरि नाम को आधार।
और या कलिकाल नाहिन, रह्यो बिधि-ब्योहार।।
नारदादि सुकादि संकर, कियो यहै बिचार।
सकल स्रतु दधि मथत पायो इतो यह घृतसार।।

(श्रीसूरदास जी)

सनातन धर्म के इन सूर्य स्वरूप सिद्धान्तों पर ग्रहण लगाने वाले राहु-केतु स्वरूप आज के संकीर्ण विचारक सर्वथा त्याज्य हैं।

क्या आप भूल गये कि जगद्गुरू श्री स्वामी रामानन्द जी ने रैदास (जो कि चमार थे), कबीरदास (जो जुलाहा थे), सेन जी (जो नाई थे) को भी शिष्य बनाया था।

कर्मकाण्ड प्रधान दक्षिण भारत की भूमि में प्रकट हुए शेषावतार श्री रामानुजाचार्य जी कावेरी स्नान के लिए जाते समय एक विप्र के कंधे का सहारा लेते एवं लौटते समय धनुर्दास के कंधे पर हाथ रखकर आते, इससे अन्य ब्राह्मण शिष्यों को बड़ा रोष होता। स्नान को जाते हुए तो ब्राह्मण का स्पर्श और लौटते हुए शूद्र का स्पर्श! राम, राम, राम! ये तो आचरण भ्रष्ट हो गये हैं। बाद में श्री रामानुजाचार्य जी ने उन द्वेषियों को श्री धनुर्दास जी के भक्ति, त्याग एवं वैराग्यमय उदात्त व्यक्तित्व से अवगत कराया।

भारतीय संस्कृति के विकास का मूल नारी शक्ति का उत्थान

भारतीय आर्य संस्कृति में अनेकानेक स्त्रियाँ जैसे देवहूति, सुनीति, सती, मंदालसा, सुबुद्धिनी, ब्रज की गोपी, रतिवन्ती, अरुन्धाती, अनुसूया, लोपामुद्रा, सावित्री, गार्गी, शाण्डिली, गणेशदेई, झालीरानी, शुभा, शोभा, कुन्ती, द्रोपदी, दमयन्ती, सुभद्रा, प्रभुता, उमा भटियानी, गोराबाई, कलाबाई, जीवाबाई, दमाबाई, केशीबाई, बाँदररानी, गोपालीबाई, मीराबाई, कात्यायनी, मुक्ताबाई, जनाबाई, सखूबाई, सहजोबाई, करमैतीबाई, रत्नावती, कुँअररानी, कान्हूपात्रा, चिन्तामणि, पिंगला, हम्मीर, सूर्य परमाल, सरदारबाई, लालबाई, वीरमती, विद्युल्लता, कृष्णा, चम्पा, पद्मा, संघामित्रा, अहिल्याबाई आदि के रूप में आदर्श माता, आदर्श भगिनी, आदर्श पत्नी, आदर्श पुत्री, आदर्श रानी, आदर्श वीरांगना, आदर्श राजनीति निपुणा, आदर्श कार्यकुशला, आदर्श ब्रह्मवादिनी, आदर्श वक्त्री की भूमिका निभाती रही हैं। आज यदि ये न होतीं तो भारतीय आर्य संस्कृति में आदर्श स्त्रियों का स्थान शून्य ही रह जाता।

आज कोई स्त्री धर्म प्रचारिका बन जाती है तो इसका खण्डन करने भारत के ही संकीर्ण धर्म प्रचारक खड़े हो जाते हैं।

आर्यमेदिनी के युगप्रवर्तक धर्मप्रचारक थे स्वामी विवेकानन्द जी, नारी शक्ति के प्रति उनके उदात्त विचारों को आज के प्रत्येक धर्म प्रचारक को पढ़ना चाहिए।

स्वामी जी का 'women of india' नामक ग्रन्थ एवं नारी शक्ति सम्बन्धी आपके अन्य सुन्दर विचारों का संग्रह 'our women' पुस्तक रूप में प्रकाशित है।

आज के युग में स्त्रियों को किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है, एक शिष्य के इस प्रकार पूछे जाने पर स्वामी जी ने कहा - छात्राओं को जीवन में सीता, सावित्री, दमयन्ती, लीलावती और मीराबाई का चरित्र सुना-पढ़ाकर अपने जीवन को इसी प्रकार समुज्ज्वल करने का उपदेश दें, इसके साथ ही शिल्प, विज्ञान, गृहकार्य एवं सुरक्षा की शिक्षा भी आवश्यक है।

मेरी इच्छा है कि कुछ बालक ब्रह्मचारी एवं बालिकाओं को ब्रह्मचारिणी बनाकर उनके द्वारा देश-देश, गाँव-गाँव में जाकर अध्यात्म का प्रसार कराया जाये। ब्रह्मचारिणियाँ स्त्रियों में अध्यात्म विद्या का प्रसार करें।

वर्तमान युग में तो स्त्रियों को यंत्र ही बना दिया गया है। राम! राम! क्या ऐसे ही भारत का भविष्य उज्ज्वल होगा?

शिष्य - किन्तु गुरुदेव! भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास में स्त्रियों के लिए कोई मठ बनाने की बात प्राप्त नहीं होती है, बौद्ध काल में हुआ भी तो उसके परिणाम में व्यभिचार बढ़ने लगा था, देशभर में घोर वामाचार सर्वत्र फैल गया था।

स्वामी जी - मुझे एक बात समझ में नहीं आती कि एक ही चित्-सत्ता सर्वभूतों में विद्यमान है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक वेद ही जिस संस्कृति का मूलाधार हैं, उस देश में स्त्री व पुरुष में इतनी भिन्नता क्यों समझी जाती है? स्त्री निन्दको! तुमने स्त्रियों की उन्नति के लिए आज तक क्या किया? नियम-नीति में आबद्ध करके स्त्रियों को मात्र जनसंख्या की वृद्धि का यंत्र बना डाला। जगदम्बा की साक्षात् मूर्ति है भारत की नारी।

नारी निंदा मत करो, नारी नर की खान।
नारी से नर ऊपजे, ध्रुव प्रह्लाद समान।।

इनका उत्थान नहीं हुआ तो क्या तुम्हारा उत्थान कभी सम्भव है?

शिष्य - गुरुदेव! स्त्री जाति तो साक्षात् माया की मूर्ति है, जैसा कि रामचरितमानस में भी लिखा है - **"नारि विष्णु माया प्रकट"** मानो मनुष्य के अधःपतन के लिए ही स्त्री की सृष्टि हुई है, ऐसी स्थिति में क्या उन्हें भी ज्ञान-भक्ति का लाभ सम्भव है?

स्वामी जी - किस शास्त्र में लिखा है कि स्त्रियाँ ज्ञान-भक्ति की अधिकारिणी नहीं हैं?

जिस समय भारत में ब्राह्मण-पण्डितों ने ब्राह्मणेतर जातियों को वेदपाठ का अनधिकारी घोषित किया, साथ ही स्त्रियों के भी सब अधिकार उस समय छीन लिये गये, अन्यथा वैदिक युग में देखो तो मैत्रेयी, गार्गी आदि ब्रह्मविचार में ऋषियों से कुछ कम नहीं रही हैं।

ना वेदविन्मनुते तं बृहन्तम्।

(तैत्तिरीय ब्राह्मण - ३/१२/९/७)

तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन।

(बृहदारण्यकोपनिषत् - ४/१/२२)

अर्थात् जिस प्रकार पुरुष ब्रह्मचारी रहकर तप व योग द्वारा ब्रह्मप्राप्ति करते थे, उसी प्रकार कितनी ही स्त्रियाँ ब्रह्मवादिनी ब्रह्मचारिणी हुई हैं।

सर्वाणि शास्त्राणि षडंग वेदान्, काव्यादिकान् वेत्ति, परञ्चिं सर्वम्।
तन्नास्ति नोवेत्ति यदत्र बाला, तस्मादभूच्चित्र-पदं जनानाम्।।

(शांकर दिग्विजय ३/१६)

सभी शास्त्रों, अंगों सहित वेदों व काव्यों की ज्ञाता भारती-देवी से श्रेष्ठ कोई विदुषी नहीं थी।

अत्र सिद्धा शिवा नाम ब्राह्मणी वेद पारगा।
अधीत्य सकलान वेदान लेभेऽसंदेहमक्षयम॥

(महाभारत उद्योग पर्व १९/१८)

वेदों में पारंगत शिवा नामक ब्राह्मणी ने सभी वेदों का अध्ययन कर मोक्ष प्राप्त किया।

सहस्त्र वेदज्ञ विप्र-सभा में गार्गी ने ब्रह्मज्ञानी याज्ञवल्क्य को शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया। इन सब आदर्श विदुषी स्त्रियों को जब उस समय अध्यात्म ज्ञान का अधिकार था तब आज क्यों नहीं?

श्री प्रह्लाद जी ने भी तो यही कहा -

"स्त्रीबालानां च मे यथा"

(श्रीमद्भागवत ७/७/१७)

स्त्री हो अथवा बालक सबको मेरे समान ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

भगवान् कृष्ण ने कहा -

भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम्

(श्रीमद्भागवत ११/२९/३१)

अगर भक्तियुक्त स्त्री-शूद्रादि भी हैं तो वे भी अधिकारी हैं दिव्य-ज्ञान प्राप्त करने के ।

इसका प्रमाण है कि उपनिषद काल में याज्ञवल्क्य जी ने मैत्रेयी को ज्ञानोपदेश किया था । महामुनि नारद जी ने इन्द्र से छुड़ाकर प्रह्लाद की माँ कयाधू को ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया था । कपिल मुनि ने अपनी माँ देवहूति को ब्रह्मज्ञान दिया था ।

दिव्य-ज्ञान सम्पन्न ऐसी भक्तिमती देवियाँ हुयी हैं, जिन्होंने अपने पति-पुत्रादि सभी को भवसागर से पार करा दिया। जैसे -

ऐसी सो मंदालसा, कृष्ण भक्त शिरताज।
पति सुत तारण भवउदधि, आपहिं भई जहाज॥

(श्रीरामरसिकावली)

मन्दालसा जी एक स्त्री ही थीं जिनकी प्रतिज्ञा थी -

माता मन्दालसा की बड़ी यह प्रतिज्ञा सुनौ
आवै जो उदर मांझ फेरि गर्भ आसना।।

(भक्तिरसबोधिनी, कवित्त - ९३)

जो भी जीव मेरे उदर में आयेगा, उसे दूसरी बार गर्भ में जाने की आशा या आवश्यकता कदापि नहीं होगी। वह आवागमन के चक्र से सर्वथा मुक्त होकर भगवान् के श्रीचरणों का अनुरागी हो जायेगा।

अपने पुत्रों को शैशवावस्था से उपदेश देती थीं -

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि संसार माया परिवर्जितोऽसि।
संसारनिद्रां त्यजस्वप्नरूपां मदालसा वाक्यमुवाच पुत्रम्।।

क्या इस श्लोक से उनकी तत्त्वज्ञान सम्पन्नता दृष्टिगोचर नहीं होती है?

इसी तरह भक्त ध्रुव को भी भगवत्प्राप्ति कराने में माता सुनीति हेतु बनीं। उन्होंने ही ममत्व का त्याग करके पाँच वर्ष की अवस्था में ध्रुव को उपदेश दिया था -

तमेव वत्साश्रय भृत्यवत्सलं मुमुक्षुभिर्मृग्यपदाब्जपद्धतिम्।
अनन्यभावे निजधर्मभाविते मनस्यवस्थाप्य भजस्व पूरुषम्।।

(श्रीमद्भागवत ४/८/२२)

'हे वत्स ध्रुव! जा उस भृत्यवत्सल भगवान् का अनन्यभाव से आश्रय ले, जिसके चरणकमलों का सहारा बड़े-बड़े मुमुक्षुजन ढूँढ़ते हैं।'

माता सुनीति के उपदेश से प्रभावित होकर वे पाँच वर्ष की अवस्था में ही वन को चले गये और वहाँ उन्हें कृष्ण-प्राप्ति हुई।

अस्तु भारत वर्ष की अवनति का कारण ही है - नारी शक्ति का विद्रोह रूप अपमान। फिर मनु जी ने तो कहा है -

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाक्रियाः।।

(मनु स्मृति - ३/५६)

स्वामी जी की प्रबल इच्छा थी कि भारत की अविवाहित बालिकाओं के लिए ऐसा कोई मठ बने जहाँ उन्हें निःशुल्क आवास, भोजन व शास्त्रों की समुचित शिक्षा प्राप्त हो सके। जो चिर कौमार्य-व्रत का पालन करने की इच्छा रखेंगी, उन्हें मठ की शिक्षिका तथा प्रचारिका बनाया जायेगा, जिससे वे देश-विदेश में जाकर नारी शक्ति को प्रबुद्ध कर सकेंगी। त्याग, संयम एवं सेवा ही उनके जीवन का व्रत होगा तब फिर से यह भूमि सीता, सावित्री और गार्गी से सज्जित हो सकेगी। कुछ ब्रह्मवादिनियों के नाम इस प्रकार हैं -

ऋग्वेद की ऋषिकायें -

घोषा गोधा विश्ववारा, अपालोपनिषन्निषत्।
ब्रह्मजाया जुहूर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादितिः॥
इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी।
लोपामुद्रा च न द्यश्च यमी नारी च शश्वती॥
श्रीर्लाक्षा सार्पराज्ञी वाक्श्रद्धा मेधा च दक्षिणा।
रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिताः॥

(बृहद्देवता २/८४,८५,८६)

घोषा, गोधा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषद्, निषद्, ब्रह्मजाया (जुहू), अगस्त्य की भगिनी, अदिति, इन्द्राणी और इन्द्र की माता, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा और नदियाँ, यमी, शश्वती, श्री, लाक्षा, सार्पराज्ञी, वाक्, श्रद्धा, मेधा, दक्षिणा, रात्री और सूर्या - सावित्री आदि सभी ब्रह्मवादिनी हुई हैं।

भूल गये कि विदेहराज जनक की सभा में महर्षि याज्ञवल्क्य से ब्रह्मवादिनी वाचक्नवी का धर्म के गूढ़ तत्त्वों पर कैसा शास्त्रार्थ हुआ था।

वहाँ तो वाचक्नवी के स्त्री होने पर कोई बात नहीं उठायी गई है फिर आज स्त्री का प्रचारिका बनना, स्त्री का कथा कहना प्रश्नवाचक क्यों है? आश्चर्य तो यह है कि ऐसे संकीर्ण विचारकों को ही अधिक विद्वान् कहा और समझा जाता है। इससे अधिक कदर्थना क्या होगी? वस्तुतः न वे धर्मज्ञ हैं, न ही धर्म प्रचारक, हाँ, धर्मध्वजी अवश्य हैं, जो भारतीय संस्कृति को स्वतन्त्र स्वदेश में ही पल्लवित होने में परिपन्थी बन रहे हैं।

भारत व भारतीयता जिनका प्राण थी और वे स्वयं भारत के प्राण थे ऐसे महामना श्री मदनमोहन मालवीय जी, देश व धर्म का ऐसा कोई कार्य नहीं जिसमें श्री मालवीय जी के उदार हृदय ने भाग न लिया हो। बात उस समय की है जब इन्हीं संकीर्ण विचारों के चलते कल्याणी नामक छात्रा को हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी में बहुत आग्रह करने पर भी वेद-कक्षा में प्रवेश प्राप्त नहीं हुआ।

विद्वान् कहे जाने वाले संकीर्ण विचारकों का कथन था कि स्त्रियों को वेदाधिकार नहीं है। विवादों में एक ओर समर्थन था तो दूसरी ओर विरोध। समय व्यतीत होता रहा, निर्णय तक कोई नहीं पहुँच सका। अन्त में हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी ने धर्म प्राण मालवीय जी की अध्यक्षता व अनेकों गणमान्य विद्वानों की उपस्थिति में

शास्त्रों के आधार पर विचार-विमर्श के उपरान्त यह निर्णय दिया -

स्त्रियों को भी पुरुषों की भाँति वेदाधिकार है। २१ अगस्त सन् १९४६ को स्वयं महामना मालवीय जी ने इस निर्णय की घोषणा की। तदनुसार कुमारी कल्याणी को वेद-कक्षा में प्रवेश प्राप्त हुआ और विद्यालय में स्त्रियों के वेदाध्ययन पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध न रहने का निर्णय हुआ।

अब भी कोई दुराग्रह करे तो इसका कोई उपचार नहीं। लोकापवाद तो सीता जी के अग्नि-परीक्षा दिये जाने पर भी समाप्त न हो सका था ।

भक्त स्त्रियों को भी कथा-वाचन का अधिकार

भागवत-धर्म से अनभिज्ञ अधिकाँश लोगों के मन में यह भ्रान्ति बनी हुई है कि पुरुषों की भाँति स्त्रियाँ व्यासपीठ पर विराजमान होकर भगवत्कथा नहीं कह सकती हैं, इसलिए वह स्त्रियों के कथा करने का विरोध करते हैं क्योंकि श्रौत-स्मार्त धर्म में स्त्री, शूद्र और द्विज बन्धु (पतित, संस्कारविहीन ब्राह्मण) वेद वाह्य बोले गए यथा-

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा।

(श्रीमद्भागवत १/४/२५)

'स्त्री, शूद्र और पतित द्विजाति-तीनों ही वेद-श्रवण के अधिकारी नहीं हैं।'

परन्तु स्त्रियों के भागवत-कथा करने का विरोध करने वाले लोग इस बात को नहीं जानते हैं कि श्रीमद्भागवत का प्रणयन तथा भागवत-धर्म की स्थापना इन्हीं के लिए हुई है। श्रीमद्भागवत में भगवान् कृष्ण के अवतरण के प्रसंग में स्वयं श्रीवल्लभाचार्य जी ने इस रहस्य का उद्घाटन किया है -

ये भक्ताः शास्त्ररहिताः स्त्रीशूद्रद्विजबन्धवः।
तेषामुद्धारकः कृष्णः स्त्रीणामत्र विशेषतः॥

(श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचिता, श्रीसुबोधिनी १०/१/१७)

'जो भगवद्भक्त स्त्रियाँ, शूद्र और पतित ब्राह्मण शास्त्ररहित हैं अर्थात् वेदबाह्य हैं, उनके उद्धारक श्रीकृष्ण हैं, यहाँ विशेष रूप से स्त्रियों के।' श्रीसूरदास जी ने इस बात की पुष्टि की -

यह लीला सब स्याम करत हैं, ब्रज जुवतिनि कैं हेत।
'सूर' भजै जिहिं भाव कृष्ण कौं, ताकौं सोई फल देत॥

यही श्रीतुलसीदास जी ने कहा कि काममोहित गोपिकाओं को भगवान् ने इतना पूज्य बना दिया कि जगत्पिता ब्रह्मा भी जिनकी चरणरज के लिए लालायित रहते हैं -

काममोहित गोपिकन पर कृपा अतुलित कीन्ह।
जगत्पिता विरंचि जिनके चरण की रज लीन्ह॥

स्वयं भगवान् ने आदिपुराण में अर्जुन से कहा -

मन्माहात्म्यं मत्सपर्यां मच्छ्रद्धां मन्मनोगतम्।
जानन्ति गोपिका पार्थ नान्ये जानन्ति तत्त्वतः॥

मेरी महिमा, मेरी सेवा, मेरा अभीष्ट-विषय एवं मेरे मन के भावों को गोपीगण ही यथार्थ रूप में जानती हैं और कोई भी उसे नहीं जान सकता।

इसीलिये जो भक्त स्त्रियाँ हैं, कृष्ण कथा कहने की वास्तविक अधिकारिणी तो वही हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है -

'भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम्।'

(श्रीमद्भागवत ११/२९/३१)

शूद्राणां योषितां च यदि भक्तिः स्यात्तर्हि तेभ्यस्ताभ्यश्च ब्रूयात्।

(श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीठाकुरकृता 'सारार्थदर्शिनी')

सनकादिक ने भी सप्ताह विधि की रचना जातिपक्षपातियों के लिए नहीं की थी अपितु दीर्घकाल तक मन एकाग्र रखने की शक्ति न होने से सप्ताह विधि का प्रचलन हुआ -

मनसश्चाजयात् रोगात्पुंसां चैवायुषः क्षयात्।
कलेर्दोषबहुत्वाच्च सप्ताहश्रवणं मतम्॥

(पद्मपुराणोक्त, श्रीमद्भागवत माहात्म्य ३/४९)

सनकादिकों ने अनन्त पाप करने वालों को ही सप्ताह का अधिकारी माना है -

ये मानवाः पापकृतस्तु सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगाः।
क्रोधाग्निदग्धाः कुटिलाश्च कामिनः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते॥
सत्येन हीनाः पितृमातृदूषकाः तृष्णाकुलाचाश्रमधर्मवर्जिताः।
ये दाम्भिका मत्सरिणोऽपि हिंसकाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते॥
पञ्चोग्रपापात् छलछद्मकारिणः क्रूराः पिशाचा इव निर्दयाश्च ये।
ब्रह्मस्वपुष्टा व्यभिचारकारिणः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥
कायेन वाचा मनसापि पातकं नित्यं प्रकुर्वन्ति शठा हठेन ये।
परस्वपुष्टा मलिना दुराशयाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते॥

(पद्मपुराणोक्त, श्रीमद्भागवत माहात्म्य ४/११-१४)

इसमें कोई पाप शेष नहीं रह गया, इसीलिए गोकर्णोपाख्यान प्रसिद्ध हुआ।

शुद्ध संस्कारवान द्विजाति का ही वेदों में अधिकार होने से वेदों के प्रणयन-विभाजन से तो मात्र द्विजाति का कल्याण ही सिद्ध हो रहा था अतः सार्वभौम कल्याण की भावना से श्रीव्यास जी ने इतिहास (महाभारत) व पुराणों की रचना की -

इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते॥

(श्रीमद्भागवत १/४/२०)

इतिहास व पुराण पंचम वेद हैं जिनमें सबका अधिकार है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है श्री रोमहर्षण जी, जिन्हें वेद-विभाजन के समय इतिहास व पुराण दिये गए। जो रोमहर्षण जी विलोमज हैं। स्मार्त दृष्टि से उन्हें अधिकार नहीं है।

क्षत्रियात्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः।

(मनुस्मृति)

स्मृति धर्म के अनुसार ब्राह्मण वर्ण की स्त्री व क्षत्रिय वर्ण के पुरुष से उत्पन्न पुत्र को सूत कहा गया है।

सूत का कार्य है - सारथि बनकर रथ हाँकना। कथावाचन उसका कार्य नहीं किन्तु यहाँ सूत जी कथा कह रहे हैं।

श्री सूत जी बोले -

अहो वयं जन्मभृतोऽद्य हास्म वृद्धानुवृत्त्यापि विलोमजाताः।
दौष्कुल्यमाधिं विधुनोति शीघ्रं महत्तमानामभिधानयोगः॥

(श्रीमद्भागवत १/१८/१८)

आज भगवच्चरित्र गाकर मैं पवित्र हो गया।

श्री सूरदास जी के शब्दों में -

कह्यौ शुक श्री भागवत-बिचार।
जाँति-पाँति कोउ पूछत नाहीं, श्रीपति कैं दरबार॥
श्री भागवत सुनै जो हित करि, तरै सो भव-जल पार।
'सूर' सुमिरि सो रटि निसि-बासर, राम-नाम निज सार।।

'स्त्री, शूद्र और पतित द्विजाति - तीनों को ही वेदाधिकार नहीं है।' यह विभाग वेदव्यास जी ने सिर्फ इनकी अल्पमति व संस्कारहीनता के कारण किया था न कि इनमें हीनता का भाव रखकर क्योंकि वैदिक-धर्मों में कर्ममार्ग की प्रधानता है और 'गहना कर्मणो गतिः' कर्मों की गति बड़ी ही गहन अर्थात् अतिशय दुर्गम है।

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।

(श्रीमद्भगवद्गीता ४/१६)

'कर्म क्या है और अकर्म क्या है-विवेकी पुरुष भी इस विषय में मोहित हो जाते हैं।'

अस्तु कर्ममार्ग की गहनता का विचार करके असदाचारी और असंस्कारी लोगों को वेदबाह्य रखा गया क्योंकि अशुद्ध चित्त वाले कर्ममार्ग में भूल कर बैठेंगे और आत्मोन्नति की जगह आत्मपतन हो जाएगा।

किन्तु फिर यह समस्या उत्पन्न हुई कि स्त्री, शूद्र और पतित द्विजातियों को वेदाधिकार नहीं है तो फिर वह धर्म-कर्म का ज्ञान कैसे प्राप्त कर पायेंगे, उनका कल्याण किस प्रकार होगा? तब -

कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह।
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्॥
भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः।
दृश्यते यत्र धर्मादि स्त्रीशूद्रादिभिरप्युत॥

(श्रीमद्भागवत १/४/२५,२९)

उनके कल्याणार्थ महामुनि व्यास जी ने बड़ी कृपा करके महाभारत इतिहास की रचना की।

महाभारत की रचना के बहाने उन्होंने वेद के अर्थ को खोल दिया, जिससे स्त्री, शूद्र आदि भी अपने-अपने धर्म-कर्म का ज्ञान प्राप्त कर पायें।

इस तरह श्रीव्यास जी ने स्त्री, शूद्र और पतित द्विजातियों के कल्याणार्थ उनकी सामर्थ्यानुसार पंचम वेद महाभारत की रचना की और उसमें इन्हें भी अधिकार दिया गया।

वैदिक मार्ग का इतना सब विभाजन करने के पश्चात् भी श्रीव्यास जी स्वयं अपूर्णत्व का अनुभव कर रहे थे -

तथापि बत मे दैह्यो ह्यात्मा चौवात्मना विभुः।
असम्पन्न इवाभाति ब्रह्मवर्चस्यसत्तमः॥
किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः।
प्रियाः परमहंसानां तए व ह्यच्युतप्रियाः॥

(श्रीमद्भागवत १/४/३०,३१)

'यद्यपि मैं ब्रह्मतेज से सम्पन्न एवं समर्थ हूँ, तथापि मेरा हृदय कुछ अपूर्णकाम-सा जान पड़ता है। अवश्य ही अबतक मैंने भगवान् को प्राप्त कराने वाले भागवत धर्मों का प्रायः निरूपण नहीं किया है। वे ही धर्म परमहंसों को प्रिय हैं और वे ही भगवान् को भी प्रिय हैं (हो न हो मेरी अपूर्णता का कारण यही है)।'

अनन्तर उन्होंने श्रीनारद जी के समक्ष अपनी स्थिति निवेदित करते हुए कहा कि मेरे द्वारा योगानुष्ठान और नियमों द्वारा परब्रह्म और शब्दब्रह्म दोनों की पूर्ण प्राप्ति कर लेने पर भी मुझमें जो बड़ी कमी है, उसे आप कृपा करके बतलाइये।

विस्तार पूर्वक देवर्षि नारद जी ने तब उन्हें (श्रीमद्भागवत, प्रथमस्कन्ध, पंचम अध्याय में) बताया कि आपने भगवान् को प्रसन्न करने वाले भागवत-धर्म की महिमा का बखान नहीं किया। उस परम धर्म का आश्रय लिए बिना शाश्वत् शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

भवतानुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम्।
येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम्॥
यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः।
न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः॥

मेरी ऐसी मान्यता है कि जिससे भगवान् प्रसन्न नहीं होते, वह शास्त्र या ज्ञान अधूरा है। आपने धर्मादि पुरुषार्थों का जैसा निरूपण किया है, भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा का वैसा निरूपण नहीं किया।

न यद् वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः।।
तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यत् श्रृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः।।
नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्।।
अथो महाभाग भवानमोघदृक् शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः।
उरुक्रमस्याखिलबंधमुक्तये समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम्।।
ततोऽन्यथा किञ्चन यद्विवक्षतः पृथग् दृशस्तत् कृतरूपनामभिः।
न कर्हिचित् क्वापि च दुःस्थिता मतिः लभेत वाताहतनौरिवास्पदम्।।
जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः स्वभावरक्तस्य महान् व्यतिक्रमः।
यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो न मन्यते तस्य निवारणं जनः।।
विचक्षणोऽस्यार्हति वेदितुं विभोः अनन्तपारस्य निवृत्तितः सुखम्।
प्रवर्तमानस्य गुणैरनात्मनः ततो भवान् दर्शय चेष्टितं विभोः।।
त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेः भजन् अपक्वोऽथ पतेत् ततो यदि।
यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः।।
तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः।
तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं कालेन सर्वत्र गभीररंहसा।।
न वै जनो जातु कथञ्चनाव्रजेत् मुकुंदसेव्यन्यवदङ्ग संसृतिम्।
स्मरन् मुकुंदाङ्घ्र्युपगूहनं पुनः विहातुमिच्छेन्न रसग्रहो जनः।।
इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम्।।

अतः श्रीनारद जी के मुख से भागवत-धर्म की महिमा श्रवण करके तब श्रीव्यास जी ने धर्मादि पुरुषार्थों एवं वर्णाश्रमादि के भेदों से अनावृत विशुद्ध भागवत धर्म प्रतिपादक निगमरूपी कल्पतरु का गलित फल परम रसमय ग्रन्थ श्रीमद्भागवत की रचना की; जो व्यास जी की अन्तिम कृति थी और तब उनका अन्तर्दाह दूर हुआ-

अंतर-दाह जु मिट्यौ ब्यास कौ, इक चित ह्वै भागवत किऐं।

(श्रीसूरदास जी)

अत: जब पंचमवेद महाभारत में ही स्त्री, शूद्र और द्विजबन्धुओं को अधिकार प्रदान किया गया फिर श्रीमद्भागवत जो भागवत-धर्म का प्रधान ग्रन्थ है, उसमें स्त्रियों का अधिकार मानना शास्त्र सम्मत ही है।

श्रीधर श्री भागौत में परम धर्म निरनै कियौ।

(श्रीभक्तमाल, छप्पय - ४५)

श्रीमद्भागवतस्य काण्डत्रयविषयेभ्य: सर्वशास्त्रेभ्य: श्रैष्ठ्यं दर्शयति-धर्म इति । अत्र श्रीमति सुन्दरे भागवते परमो धर्मो निरूप्यते। परमत्वे हेतु: - प्रकर्षेण उज्झितं कैतवं फलाभिसन्धि ा लक्षण कपटं यस्मिन् स: । प्रशब्देन मोक्षाभिसन्धिरपि निरस्त: । केवलमीश्वराराधनलक्षणो धर्मो निरूप्यते ।

(श्रीधरस्वामिजीविरचिता, भावार्थदीपिका)

श्रीनाभाजी ने श्रीभक्तमाल जी में लिखा है कि श्रीकबीरदास जी तो भक्तिहीन षड्दर्शन एवं वर्णाश्रम के धर्मो को अधर्म ही कहते थे -

कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षटदरसनी ॥
भक्ति विमुख जो धर्म सो अधरम करि गायो ।

किन्तु आज अनेकधर्मविभ्रान्त विचारक इस परम धर्म की निष्ठा को सर्वथा शास्त्र विरुद्ध एवं उच्छृंखलता समझते हैं । जबकि सभी शास्त्रों का सार इसी निष्ठा तक पहुँचना है और यही भगवान् को भी अतिप्रिय है, इसीलिए भगवान् ने यहाँ तक कह दिया कि -

मन्निमित्तं कृतं पापमपि धर्माय कल्पते ।
मामनादृत्य धर्मोऽपि पाप: स्यात् मत्प्रभावत: ॥

अर्थात् मेरे लिए किया गया पाप भी मेरे प्रभाव से धर्म के रूप कल्पित (स्वीकृत) होता है किन्तु मेरे सम्बन्ध से रहित धर्म का अनुष्ठान भी पाप है ।

इसी बात को सर्वत्र पुष्ट किया गया है । यथा -

श्रीभगवान् का अन्तिम गीतोपदेश -

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच:॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १८/६६)

धर्मानन्यान परित्यज्य मामेकं भज विश्वसन् ।
यादृशी यादृशी श्रद्धा सिद्धिर्भवति तादृशी ॥

(ब्रह्म संहिता ६१)

हे ब्रह्मन् ! दूसरे-दूसरे सारे धर्मो का परित्यागकर सुदृढ़ विश्वासपूर्वक एकमात्र मेरा ही भजन करो । श्रद्धा के अनुरूप ही सिद्धि होती है अर्थात् जैसी श्रद्धा होती है, वैसी ही सिद्धि मिलती है।

श्रीवाल्मीक जी के श्रीराम जी के प्रति वचन -

धर्माधर्मान् परित्यज्य त्वामेव भजतोऽनिशम् ।
सीतया सह ते राम तस्य हृत्सुखमंदिरम् ॥

(अध्यात्म रामायण ६५/५)

जो धर्म और अधर्म दोनों को छोड़कर निरन्तर आपका ही भजन करता है, हे राम ! उसके हृदय मंदिर में सीता सहित आप सुखपूर्वक रहते हैं ।

श्रीतुलसीदास जी भी इसी सिद्धान्त के पोषक थे, इसीलिए उन्होंने मानस जी में लिखा -

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहँ नहिं राम पेम परधानू॥

(रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड २९१)

लिखा ही नहीं किया भी। उन्होंने वैदिक मान्यताओं का अतिक्रमण करके श्रीमीराबाई जी को पत्र लिखा था -

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद विभीषण बंधु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज बनितन्हि भये मुद मंगलकारी॥

इसमें '**मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव**' ये सभी वैदिक मन्त्र कट जाते हैं ।

श्रीमद्भागवत में भी उद्धव जी के प्रति भगवान् ने यही कहा -

आज्ञायैवं गुणान् दोषान् मयाऽऽदिष्टानपि स्वकान् ।
धर्मान् संत्यज्य य: सर्वान् मां भजेत स च सत्तम: ॥

(श्रीमद्भागवत ११/११/३)

जो धर्माधर्मो को छोड़कर मुझे भजता है, वही सर्वोत्तम है।

श्रीसनातन जी के प्रति श्रीचैतन्यमहाप्रभु जी के वचन -

पूर्व आज्ञा, वेदधर्म कर्म योग ज्ञान ।
सब साधि शेषे एइ आज्ञा बलवान् ॥
एइ आज्ञाबले भक्तेर श्रद्धा यदि हय ।
सर्व कर्म त्याग करि से कृष्ण भजय ॥

(चै.च.मध्य.२२/३५,३६)

जिनकी इन शास्त्र वचनों के प्रति श्रद्धा नहीं है वे तो भागवत पढने के भी अधिकारी नहीं हैं और वे यवन के समान अस्पृश्य व असम्भाष्य हैं एवं यमराज के द्वारा दण्डनीय हैं -

भागवत जे ना माने से यवन सम।
तार शास्तां आछे जन्मे प्रभु यम॥

(श्रीचैतन्यभागवत, आदिलीला १/३९)

चाहे वे कितने ही बड़े कुलीन विद्वान् ब्राह्मण ही क्यों न हों, अपराधजनक व्याख्याएँ करने से वे श्रोताओं सहित यमपाश में आबद्ध होकर भव-सागर में डूब जायेंगे।

जे वा भट्टाचार्य, चक्रवर्ती, मिश्र सब।
ताराओ ना जाने ग्रन्थ-अनुभव॥
शास्त्र पड़ाइया सबेए इ कर्म करे।
श्रोतार सहित यमपाशे डूबि मरे॥

(श्रीचैतन्यभागवत, आदिलीला २/६७-६८)

श्रीबिहारिन देव जी ने भी कहा कि जो भागवत धर्म की महिमा को अतिशयोक्ति समझते हैं, वे सबसे ज्यादा पतित और अपवित्र हैं -

भागवत धर्म न संग्रह्यौ, सँचौ धर्म अनेक।
पतित पवित्र न हौहिंगे, बिनु अनन्य निजु टेक।।

यही श्रीप्रह्लाद जी का भी मत है -

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभपादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थप्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमान:।।

(श्रीमद्भागवत ७/९/१०)

भले ही द्वादश गुण सम्पन्न कोई ब्राह्मण ही क्यों नहीं है यदि वह 'भूरिमानी' है तो एक भक्त चाण्डाल से भी ज्यादा वह अपवित्र है। वह भक्त चाण्डाल तो सकुल अपना कल्याण कर लेगा किन्तु वह गुरुत्वाभिमानी ब्राह्मण आत्मकल्याण से भी वंचित रहेगा।

भागवत धर्म में देह की नहीं अपितु भाव की पवित्रता का महत्त्व है। भाव वह शक्ति है जिससे भक्त चाण्डाल भी अनुक्षण पवित्र रहता है।

इसका प्रमाण है कि नीलगिरि पर काक जी वक्ता हैं व महाज्ञानी गरुड़ जी श्रोता।

गरुड़ महाग्यानी गुन रासी। हरि सेवक अति निकट निवासी।।

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - ५५)

इससे सिद्ध होता है कि जिसमें विशुद्ध भक्ति है, वही श्रेष्ठ है।

विद्याप्रकाशो विप्राणां राज्ञां शत्रुजयो विशाम्।
धनं स्वास्थ्यं च शूद्राणां श्रीमद् भागवताद् भवेत्।।
योषितामपरेषां च सर्ववाञ्छितपूरणम्।
अतो भागवतं नित्यं को न सेवेत भाग्यवान्।।

(स्कन्दपुराणान्तर्गत श्रीमद्भागवत माहा ३/१६,१७)

श्रीमद्भागवत जी के सेवन से ब्राह्मणों को बोध, क्षत्रियों को शत्रु-जय, वैश्य को धन-प्राप्ति व शूद्रों को आरोग्य प्राप्त होता है। स्त्री, अन्त्यज व अन्य सबके मनोरथ पूर्ण होते हैं अतः श्रीमद्भागवत नित्य सेवनीय है।

वेदादि में सबका अधिकार न होने से दयामय श्रीव्यास जी ने सबके लिए सर्वदा सेवनीय श्रीमद्भागवत का प्रणयन किया।

यही है श्री व्यास जी की सर्वभूत दया।

नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारैराराधितः सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः।
यत्सर्वभूतदययासदलभ्ययैको नानाजनेष्ववहितः सुहृदन्तरात्मा॥

(श्रीमद्भागवत ३/९/१२)

भगवान् सेवा-पूजा से वैसे प्रसन्न नहीं होते, जैसे सर्वभूतदया (प्राणी मात्र पर दया से प्रसन्न होते हैं।) फिर स्त्री-शूद्र तो विशेष दया के पात्र हैं।

दूरे हरिकथाः केचिद् दूरे चाच्युतकीर्तनाः।
स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकम्प्या भवादृशाम्।।

(श्रीमद्भागवत ११/५/४)

दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्तनाः।
स्त्रियः शूद्रादयो ये च तेषां बोधो यतो भवेत्।।

(श्रीमद्भागवत, पद्मपुराणोक्त, माहात्म्य ६/६)

प्रारम्भ में सप्ताह यज्ञ की विधि बताते हुए भी स्त्री, शूद्र भगवद् कथा-कीर्तन से दूर न पड़ जाएँ। इसके लिए विशेष प्रबन्ध की आज्ञा है।

यही नहीं दयामय व्यास जी ने स्त्रियों पर विशेष कृपा करते हुए उनके असाध्य रोगों का उपचार भी श्रीमद्भागवत में श्रीमद्भागवत ही कहा है।

अपुष्पा काकवन्ध्या च वन्ध्या या च मृतार्भका।
स्रवद् गर्भा च या नारी तया श्राव्या प्रयत्नतः।।

(श्रीमद्भागवत, पद्मपुराणोक्त, माहात्म्य ६/५२)

जिन्हें रजोदर्शन न हो, एक ही सन्तान हुई हो, वन्ध्या हो, जिसकी सन्तान जन्म लेकर मर जाती हो अथवा जिसका गर्भपात हो जाता हो, वह यत्नपूर्वक अवश्य यह कथा श्रवण करे।

भागवत धर्म वैष्णव धर्म है, इसमें स्मार्त विधि-निषेधों को घटित नहीं करना चाहिए। भागवत धर्म का विधि-निषेध तो मात्र यही है -

राम भज राम भज राम भज बावरे।
राम को बिसारिवो निषेध सरताज रे।।

भागवत धर्म साध्य धर्म है और अन्य सब साधन धर्म हैं।

जप जोग धर्म समूह तें नर भगति अनुपम पावई।
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिन दास तुलसी गावई।।

(श्रीरामचरितमानस, अरण्यकाण्ड - ६)

अतः भागवत धर्म में स्मृति धर्मो का विधि-निषेध घटित नहीं करना चाहिए।

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति।।

(श्रीमद्भागवत १/२/६)

श्री भगवान् में अहैतुकी व अप्रतिहता भक्ति हो जाना ही भागवत धर्म है। भागवत धर्म को छोड़कर मात्र त्रैकालिक स्नान, संध्योपासन आदि-आदि ही करते रहे तब तो सब दण्ड बैठक का परिश्रम मात्र ही रहा।

नारी की व्यासरूपता अनेक रूपों में

यदि देखा जाय तो अनादिकाल से भागवत वक्ता स्त्री ही रही है और स्त्रियों के ही कथा कहने पर अधिक रसास्वादन होता है क्योंकि वह निश्चिन्त मानस होती हैं। भागवत के वक्ता को निश्चिन्त मानस होना चाहिए अन्यथा रसास्वाद नहीं होगा, होगा भी तो अल्पमात्रा में।

यदा विष्णुः स्वयं वक्ता लक्ष्मीश्च श्रवणे रता।
तदा भागवतश्रावो मासेनैव पुनः पुनः॥
यदा लक्ष्मीः स्वयं वक्त्री विष्णुश्च श्रवणे रतः।
मासद्वयं रसास्वादस्तदातीव सुशोभते॥

(श्रीमद्भागवत, स्कन्दपुराणान्तर्गत माहात्म्य ३/३५,३६)

जिस समय स्वयं भगवान् नारायण भागवत कथा के वक्ता होते हैं और लक्ष्मी जी प्रेमपूर्वक श्रवण करती हैं तो कथा एक मास तक चलती है एवं जब लक्ष्मी जी वक्ता होती हैं और भगवान् नारायण श्रोता बनकर सुनते हैं, तब भागवत-कथा का रसास्वादन दो माह तक होता है; लक्ष्मी जी के व्यासत्व में कथा बड़ी सुन्दर और बहुत ही रुचिकर होती है।

ऐसा क्यों ?

अधिकारे स्थितो विष्णुर्लक्ष्मीर्निश्चिन्तमानसा।
तेन भागवतास्वादस्तस्या भूरि प्रकाशते।।

(श्रीमद्भागवत, स्कन्दपुराणान्तर्गत माहात्म्य ३/३७)

इसका समाधान यह है कि भगवान् विष्णु तो अधिकारारूढ़ हैं, उन्हें जगत् के पालन की चिन्ता करनी पड़ती है परन्तु लक्ष्मीजी इन झंझटों से अलग हैं, अतः उनका हृदय निश्चिन्त है इसी से लक्ष्मी जी

के मुख से भगवत्कथा का रसास्वादन अधिक प्रकाशित होता है।

कोई यदि कहे कि लक्ष्मी जी का तो दिव्य चिन्मय स्वरूप है और यहाँ पृथ्वीलोक की पाञ्चभौतिक देह वाली स्त्रियाँ, जिनके शरीर में मल-मूत्रादि अनके विकार भरे हैं, वे लक्ष्मी जी तरह वक्ता कैसे हो सकती हैं ?

इस प्रकार की शंका करने वालों को यह याद रखना चाहिए -

एताः परं स्त्रीत्वमपास्तपेशलं निरस्तशौचं बत साधु कुर्वते।

(श्रीमद्भागवत १/१०/३०)

जिस स्त्री शरीर में अपास्तपेशल और निरस्तशौच दोष हैं, वे भी भगवान् की पूज्या बन गयीं।

माता मन्दालसा जी ने भी स्त्री होकर अपने सदुपदेशों के माध्यम से अपने चारों पुत्रों को तत्त्वज्ञान प्राप्त कराकर भवसागर से पार परा दिया।

श्रीकरमैती बाई भी एक स्त्री थीं, जिनके उपदेश से ही उनके पिता श्रीपरशुराम जी का कल्याण हुआ, उन्हें भक्ति की प्राप्ति हुई जबकि वह स्वयं खंडेला (राजस्थान) के शेखावत राजा के कुल पुरोहित थे किन्तु एक स्त्री के उपदेश ने ही उनका उद्धार किया। (भक्तिरसबोधिनी, कवित्त ४४८-४९) -

श्रीकरमैती जी कृष्ण-प्रेमवश घर-परिवार की मोह-ममता त्यागकर वृन्दावन चली आई थीं। पुत्री मोह के कारण इनके पिता इन्हें लेने के लिए वृन्दावन आये और करमैती से बोले -

चलो गृह वास करौ लोक उपहास मिटै,
सासुघर जावौ मत सेवा चित लाइयै।
कोऊ सिंह व्याघ्र अजू वपु कों विनास करै,
त्रास मेरे होत फिरि मृतक जिवाइयै।।

'बेटी! अब तुम चलकर घर में ही रहो, जिससे संसार में हमारा उपहास न हो, तुम भले ही ससुराल मत जाना घर में ही रहकर भक्ति करना। यहाँ इस घोर वन में कोई बाघ-सिंह तुम्हें खा जायेगा, मुझे इस बात का बड़ा भय लग रहा है, चलो यहाँ से मृतप्राय मुझे तथा अपनी माँ को जीवन दान दो।' पिता की इन बातों को सुनकर करमैती बाई बोलीं -

बोली कहा सांच बिन भक्ति तन ऐसो जानौ,
जोपै जियौ चाहौ करौ प्रीति जस गाइयै।

'पिताजी! आपने सत्य कहा। बिना भगवद्-भक्ति के शरीर मुर्दा ही समझिये। यदि आप जीवन चाहते हैं तो भगवान् की भक्ति और उनकी कीर्ति का गान कीजिये।' आगे बोलीं -

कही तुम कटी नाक कटै जोपै होय कहूँ,
नाक एक भक्ति नाक लोक में न पाइयै।
बरस पचास लगि बिषै ही में वास कियौ,
तऊ न उदास भये चबे को चबाइयै।

'पिताजी! आपने जो यह कहा कि 'मेरी नाक कट गई।' नाक कटेगी तो तब जब नाक होगी, नाक अर्थात् प्रतिष्ठा तो भगवद्भक्ति है, भक्तिहीन पुरुष तो पूर्व से ही नकटा है। पिताजी! आप अपने मन में विचारिये कि पचासों वर्षो से आप विषयों में आसक्त हैं फिर भी आपको उनसे वैराग्य नहीं हुआ। चबे हुए को ही बार-बार चबा रहे हैं अर्थात् भोगे हुए विषयों को ही बार-बार भोग रहे हैं।'

रात तें ज्यौं प्रात होत ऐसे तम जात भयौ।

श्रीकरमैती जी के उपदेश को सुनकर उनके पिता राजपुरोहित श्रीपरशुराम जी का अज्ञान उसी प्रकार नष्ट हो गया, जैसे प्रातःकाल होते ही अन्धकार दूर हो जाता है।

इसी तरह एक दासी के उपदेशों से रानी रत्नावती जी को भक्ति की प्राप्ति हुई थी। उन्होंने उसी को गुरु मान लिया और ऊँच-नीच का भेदभाव छोड़कर उच्चासन पर बिठाकर उससे ही कृष्ण-कथा श्रवण करती थीं -

तब चेरी को मानि गुरु, सिंहासन बैठाय।
रत्नावती पूजन लगीं, प्रीति प्रतीति बढ़ाय।।

श्रीभक्तमाल छप्पय १४२ एवं २५२ वैष्णववार्त्ता में रानीरत्नावती जी का चरित्र दृष्टव्य है।

इसी तरह गंगा-जमुनाबाई दो भक्ता हुयी हैं, जो श्रीकृष्ण का गुणगान करती थीं, लोक-लज्जा की परवाह किये बिना उसे सुनने के लिए गोस्वामी श्रीहितहरिवंश जी के शिष्य श्रीपरमानन्ददास जी जाया करते थे। अनन्तर दोनों ही बाईयाँ श्रीहितहरिवंश जी की शिष्याएँ बनीं।

आलोचकों को क्या यह सब प्रमाण दिग्दर्शित नहीं होते हैं, जो स्त्रियों के कथा कहने का विरोध करते हैं।

राम कथा के तेइ अधिकारी। जिन्ह कें सतसंगति अति प्यारी॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड - १२८)

उपदेष्टा बनने में जाति-लिंग भेद नहीं चलता बल्कि चित्तभेद चलता है क्योंकि भगवान् मन की सच्चाई पर रीझते हैं -

साँचे मन के मीता रघुवर साँचे मन के मीता।
कब शबरी काशी को धाई कब पढ़ि आई गीता।।
जूठे फल ताके प्रभु खाये नेक लाज नहि कीता।
लंकापति को गर्व हर्‌यो है राज विभीषण दीता।
किय सुग्रीव सखा रघुनन्दन वानर किये पुनीता॥
सफल यज्ञ मुनिजन के कीने सब भूपन बन जीता॥
भसम रमाई कहाँ अहिल्या गनिका योग न कीता।
तुलसिदास प्रभु शुद्ध चित्त लखि सबहिं मोक्षपद दीता॥

अतः आलोचकों को यह विचार करना चाहिये कि जब काक शरीरधारी श्रीकाकभुशुण्डि जी एवं विलोम जाति में उत्पन्न श्रीसूत जी वक्ता बन सकते हैं तो क्या कोई भक्त स्त्री वक्ता नहीं बन सकती।

जिहिं कुल साधु भागवत होई।
गनिय न वर्ण अवर्ण तासु को आप तरै तारै कुल दोई।।

अथवा

राम भजत बिटिया भली राम बिमुख न पूत।
शबरी तो हरिधाम गयी धुन्धुकारी भया भूत।।

अगर कोई कहे कि स्त्री इस प्रकार की भक्ता भी तो होनी चाहिए। अरे भाई, यूं तो ऐसा कोई ब्राह्मण भी नहीं मिलेगा, जो सभी आर्य वैदिक मर्यादाओं का पालन कर रहा हो, आंशिक वैदिक धर्म का पालक भी जब याज्ञिक और पण्डित माना जाता है तब आंशिक भक्ति भी जिसमें है, वह क्या भक्त नहीं है?

साधक भक्त भी तो भक्त ही है।

साधन सिद्धि राम पद नेहु।

गोस्वामी जी ने यहाँ तक कहा -

तुलसी जाके मुखन तें धोखेहु निकसत राम।
ताके पग की पगतरी मोरे तन को चाम।।

श्री भगवान् के वचन -

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।

(श्रीमद्भगवद्गीता ९/३०)

जो आज आंशिक भक्ति कर रहा है, वह कल निश्चित ही सिद्धा भक्ति की स्थिति पर भी पहुँचेगा।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के शब्दों में वैष्णव की परिभाषा -

जाँर मुखे एक बार सुनि कृष्ण नाम ।
सेइ वैष्णव ताँर करिओ सम्मान ।।

अतः नारी की व्यासरूपता अनादिकाल से चली आ रही है। पद्मपुराण, पातालखण्ड में कथा वर्णित है - वृषभानु भवन में जब श्रीराधारानी का प्राकट्य हुआ तो श्रीनारद जी उनके दर्शनार्थ आये और देखा कि भानु पुत्री धरती पर लोट रही हैं। नारद जी ने उसे अपनी गोद में उठा लिया और परमानन्द के समुद्र में डूब गए, चार घड़ी तक निचेष्ट रहे तत्पश्चात् सोचने लगे कि उमा, लक्ष्मी, सरस्वती, कान्ति तथा विद्या आदि सुन्दरी स्त्रियाँ इसके सौन्दर्य की छाया की भी समानता नहीं कर सकतीं, अब मैं एकान्त में इस देवी की स्तुति करूँगा अतः उन्होंने भानु बाबा को कहीं भेज दिया और श्रीराधारानी की स्तुति करने लगे - हे देवि! ब्रह्मा और रूद्र आदि के लिए भी तुम्हारे तत्त्व का बोध होना कठिन है। माया से बालक रूप धारण करने वाले परमेश्वर महाविष्णु की जो मायामयी अचिन्त्य विभूतियाँ हैं, वे सब तुम्हारी अंशभूता हैं। तुम्हारा जो स्वरूप श्रीकृष्ण को परमप्रिय है, मुझपर दया करके इस समय अपना वह मनोहर वपु प्रकट करो।'

इस तरह देवर्षि स्तुति करते हुए कृष्ण-कीर्तन करने लगे उसी समय वह बालिका दिव्यरूप धारण करके उनके समझ प्रकट हो गई और तत्काल ही तत्सदृश अन्य व्रज-बालाएँ भी प्रकट होकर भानुकुमारी को घेरकर खड़ी हो गयीं। नारद जी यह सब देखकर एकाएक मूर्च्छित से हो गए, तब व्रजबालाओं ने श्रीराधारानी का चरणोदक लेकर नारद जी के ऊपर छींटा मारा। तब वह सचेत हुए। वे व्रजबालाएँ बोलीं - मुनिश्रेष्ठ! तुम बड़े भाग्यशाली हो, तुमने भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णोपासना की यही कारण है कि ब्रह्मा-रुद्रादि देवता, सिद्ध, मुनीश्वर तथा अन्य भगवद्भक्तों के लिए भी जिसे देखना और जानना कठिन है, वही श्रीकृष्ण की प्रियतमा आज तुम्हारे समक्ष प्रकट हुई हैं अतः अविलम्ब इस देवी की प्रदक्षिणा करो और इसके चरणों में मस्तक झुका लो फिर समय नहीं मिलेगा, यह अभी इसी क्षण अन्तर्धान हो जाएगी। तब नारद जी दो मुहूर्त तक उस दिव्य बाला के श्रीचरणों में पड़े रहे।

इसी प्रकार श्रीब्रह्मवैवर्त्त पुराण, कृष्णखण्ड अध्याय १५ में कथा वर्णित है - एक बार नन्दबाबा बालरूप श्रीकृष्ण को गोद में लेकर गौचारण करते हुए श्रीवृन्दावनस्थ भांडीरवन पहुँचे। वहाँ सरोवर में गायों को स्वादिष्ट जल पान कराकर व पान करके एक वृक्ष के मूल में बैठ गए। उसी समय श्रीकृष्ण ने अपनी माया से आकाश को मेघाच्छन्न कर दिया। वर्षा के साथ-साथ जोर से वायु चलने लगी, बादल गरजने लगा, नन्दबाबा यह सब देखकर भयभीत हो गए कि गायों-बछड़ों को छोड़कर मैं घर कैसे जाऊं यदि जाऊं भी तो इस बालक का क्या होगा। वह इस प्रकार सोच-विचार ही कर रहे थे कि उसी समय वहाँ श्रीराधारानी का आगमन हुआ। जिनके करकमलों में सहस्त्रदल कमल व रत्नमय दर्पण सुशोभित हो रहा था। उस निर्जन वन में उन्हें देखकर नन्दबाबा को महान आश्चर्य हुआ, उन्होंने श्रीराधारानी को नतमस्तक होकर नमस्कार किया और बोले कि गर्ग के मुख से मैं तुम्हारे विषय में सुन चुका हूँ, तुम हरि की लक्ष्मी से भी अधिक प्रेयसी हो और ये जो मेरे अंक में हैं यह महाविष्णु से भी श्रेष्ठ हैं, निर्गुण एवं अच्युत हैं। हे भद्रे! अपने इन प्राणनाथ को ग्रहण करो। बालक को श्रीजी ने ले लिया और नन्दबाबा से बोलीं - 'नन्द! अनेक जन्मों के पुण्यफल से तुमने मुझे देखा है, तुम इस रहस्य को गुप्त ही रखना। व्रजेश! तुम इच्छित वर मुझसे माँग लो। तब नन्द बाबा ने कहा कि 'प्रथम तो तुम दोनों के चरणों में मेरी भक्ति हो और दूसरी मेरी इच्छा है कि हम दोनों दम्पति तुम्हारे सन्निकट गोलोक में निवास करें।' श्रीजी नन्दबाबा को उनके मनवांछित वर देकर श्रीकृष्ण को लेकर वहाँ से दूर चली गयीं।

इसी प्रकार श्रीराधारानी ने यशोदा जी को भी (अध्याय ११५में) भक्ति-ज्ञान का उपदेश दिया, जिसके कुछ प्रमुख श्लोक इस प्रकार हैं -

वरं हुतवहज्वालां भक्तो वाञ्छति पञ्चरम्।
वरं च कण्टके वासं वरं च विषभक्षणम्।।
हरिभक्तिविहीनानां न सङ्गं नाशकारणम्।
स्वयं नष्टो भक्तिहीनो बुद्धिभेदं करोति च।।
अङ्कुरो भक्तिवृक्षस्य भक्तसङ्गेन वर्धते।
परं हरिकथालापपीयूषासेचनेन च।।
अभक्तालापदीपाग्निज्वालायाः कलयापि च।
अङ्कुरः शुष्कतां याति पुनः सेकेन वर्धते।।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्णखण्ड ११०/११-१५)

'श्रीकृष्ण भक्त अग्नि की ज्वाला से युक्त पिंजरे में बंद होना, काँटों में रहना और विष खाना स्वीकार करता है, परन्तु कृष्ण-भक्ति शून्य लोगों का संग ठीक नहीं समझता है क्योंकि वह विनाश का कारण होता है।

भक्ति से रहित पुरुष स्वयं तो नष्ट होता ही है, साथ ही दूसरे की बुद्धि में भेद उत्पन्न कर देता है।

भक्त के संग से तथा भगवत्कथा रूपी अमृत के सिंचन से भक्ति रूपी वृक्ष का अंकुर बढ़ता है; किन्तु भक्तिहीनों के साथ वार्तालाप रूपी प्रदीप्ताग्नि की ज्वाला की एक कला के स्पर्श से भी वह अंकुर सूख जाता है, फिर सींचने से ही उसकी वृद्धि होती है।

इसीलिये भक्तिहीनों का संग सावधानी से उसी प्रकार त्याग दो जैसे मनुष्य काल-सर्प को देखकर डरकर भाग जाता है।'

दैहिक अपावनता के रहते भी भक्त परम पावन

यह सर्वविदित है कि स्त्रियों को प्रतिमाह ३-४ दिन के लिए रजोधर्म होता है और उस अपवित्र अवस्था में वैदिक कार्यों को करने की आज्ञा उन्हें धर्मशास्त्र नहीं देते हैं।

इसलिए लोगों की यह शंका सर्वथा उचित ही है कि यदि कोई भागवत वक्ती श्रीमद्भागवत सप्ताह ज्ञानयज्ञ के दौरान रजस्वला हो जाती है तो फिर उस अपवित्र अवस्था में उसे कथा कहने का अधिकार नहीं रह जाता है, यदि कहती भी है तो यह धर्म विरुद्ध कार्य है तथा वह कथा ज्ञानयज्ञ भी अपूर्ण ही रहेगा।

यद्यपि शंका सही है किन्तु हर एक नियम अधिकार भेद से सर्वत्र घटित नहीं होता है, वैदिक मर्यादानुसार शौचाचार अति अनिवार्य है और सभी के द्वारा अनुपालनीय भी है किन्तु भागवत धर्मावलम्बी भक्त दैहिक अपावनता के रहते हुए भी सतत् कृष्ण स्मरण के प्रभाव से परम पवित्र रहते हैं क्योंकि जिन श्रीभगवान् का एक नाम श्वपचादि को भी परम पावन बना देने वाला है फिर जो भक्तजन अहर्निश प्रभु के स्मरण-चिन्तन में लगे रहते हैं, जिनके हृदय कमल में श्रीभगवान् नित्य विराजमान रहते हैं, क्या उन भक्तों के देह में भी अपवत्रिता के लिए कोई स्थान शेष रह सकता है?

स्वयं श्रीभगवान् ने आदिपुराण में कहा है -

विपर्याचारकारी च मद्भक्त सर्वदा शुचिः।
तद्दोषं दर्शनं प्रोचुस्ते वै निरयगामिनः।।

(आदिपुराण)

विपर्यय आचरण दिखने पर भी हमारा भक्त हर समय पवित्र रहता है, जो उसमें दोष दर्शन करता है, वह निश्चित ही नरकगामी है।

इसलिए भागवत-कथा के दौरान यदि भागवत वक्ती रजस्वला हो जाती है तब भी वह भगवत्स्मरण के प्रभाव से परम पवित्र है और ऐसा होने पर न ही वह सप्ताह ज्ञानयज्ञ निष्फल होगा क्योंकि -

मन्त्रतस्तन्त्रश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः।
सर्वं करोति निश्छिद्रं अनुसंकीर्तनं तव।।

(श्रीमद्भागवत ८/२३/१६)

भगवान् का नाम-संकीर्तन मन्त्रों की, अनुष्ठान-पद्धति की, देश-काल-पात्र और वस्तु की सारी कमियों को पूर्ण कर देता है।

भागवत-धर्म की यह महिमा यद्यपि साधरणजनों के लिए तो दुर्बोध है। अरे, साधारण जन तो छोड़ो बड़े-बड़े दिग्गजों के लिए भी इस महिमा को समझना कठिन है। इसीलिये तो वे तरह-तरह की शंकाएँ करते हैं। इस महिमा को तो भागवत-धर्म के प्रणेता साक्षात् भगवान् अथवा भागवत-धर्म के ज्ञाता द्वादश महाभागवत ही समझ सकते हैं -

विधि नारद, शंकर, सनकादिक, कपिलदेव, मनु भूप।
नरहरिदास, जनक, भीष्म, बलि, शुकमुनि धर्मस्वरूप।।
अजामेल परसंग यह निर्णय परम धर्म के जान।
इनकी कृपा और पुनि समझें 'द्वादश भक्त' प्रधान।।

(श्रीभक्तमाल, छप्पय - ७)

इन महाभागवतों की जिन पर कृपा हो जाय वे भक्तजन भी समझ जाते हैं।

भागवत धर्म की इस महिमा को स्व लीलाओं में स्वयं भगवान् ने प्रकट भी किया। यथा -

द्रुपदसुता ऋतुवंतिनी, रही येकपट धारि।

(श्रीरामरसिकावली)

जिस समय कौरव सभा के मध्य दुःशासन ने द्रौपदी को निर्वस्त्र करने का प्रयत्न किया, उस समय वह रजस्वला थी किन्तु भगवान् ने यह सब नहीं विचार किया, द्रौपदी के 'गोविन्द' कहते ही भगवान् आकर द्रौपदी के अधोअंग की साड़ी बन गए।

सा कृष्णमाया नमिताङ्गयष्टिः शनैरुवाचाथ रजस्वलास्मि।
एकं च वासो मम मन्दबुद्धे सभां नेतुं नार्हसि मामनार्य॥

(महाभारत द्यूतपर्व ७८/३२)

दुःशासन के बलात् खींचने पर द्रौपदी का शरीर झुक गया और वह धीरे से बोली - 'रे मन्दबुद्धि दुष्टात्मा! इस समय मैं रजस्वला, एक वस्त्रा हूँ, सभा में जाने योग्य नहीं हूँ।' शास्त्र का कथन है -

प्रथमे चाण्डालिनी ज्ञेया द्वितीये रजका स्मृता।
तृतीयस्मिन्दिने शूद्रा स्नात्वा शुद्धा ततो भवेत्॥

रजोदर्शन होने पर पहले दिन स्त्री चाण्डालिनी के समान, दूसरे दिन धोबिन व तीसरे दिन शूद्र के समान अपवित्र रहती है अनन्तर स्नान करके शुद्ध होती है। किन्तु भागवत धर्म में -

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते।।

(श्रीमद्भागवत ३/३३/७)

एक-दो दिन के लिए चाण्डालत्व को प्राप्त होने वाला नहीं, जो जन्मजात चाण्डाल है, वह भी नाम श्रवण-कीर्तन के प्रभाव से श्रेष्ठ हो जाता है। उसे फिर अलग से तपस्या, यज्ञ, तीर्थस्नान, सदाचार व शुभाचरण की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

कर्मकाण्ड में भी देखें तो भगवन्नाम स्मरण से ही शुद्धि है।

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स वाह्याभ्यान्तरः शुचिः॥

(पद्मपुराण, पातालखण्ड)

अरे, गर्भ से अधिक घृणित व निन्दित स्थान दूसरा क्या होगा किन्तु -

मातुर्गर्भगतो वीरः स तदा भृगुनन्दन।
ददर्श पुरुषं कञ्चिद्दह्यमानोऽस्त्रतेजसा।।

(श्रीमद्भागवत १/१२/७)

परीक्षित जी की रक्षा के लिए माता उत्तरा के गर्भ जैसे घृणित, निन्दित उस मल-मूत्र के कूप में भी भगवान् पहुँच गये। वह भी शक्ति और प्रकाश रूप से नहीं अपितु साक्षात् साकार विग्रह से।

गर्भस्थ शिशु ने देखा -

अङ्गुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरटमौलिनम्।
अपीच्यदर्शनं श्यामं तडिद्वाससमच्युतम्।।

(श्रीमद्भागवत १/१२/८)

अंगुष्ठ भर आकार है, सुन्दर श्याम शरीर पर विद्युतवत् चमकता

पीताम्बर एवं मस्तक पर झिलमिलाता स्वर्णिम किरीट शोभायमान है।

श्रीभक्तमालजी के अनुसार -

दक्षिण भारत की यात्रा करते हुए श्री स्वामी रामानन्दाचार्य जी का दर्शन कर एक वारमुखी का मन पवित्र हुआ । वह अपने सम्पूर्ण जीवन की कमाई को स्वामी जी के चरणों में अर्पित करने पहुँची। श्रीस्वामी रामानन्दाचार्यजी ने उस धन को स्वयं न स्वीकार करते हुए श्री रंगनाथ भगवान् का मुकुट बनाने की आज्ञा दी। तदनुसार मणिमय मुकुट लेकर जब वह पहुँची तो स्वामी जी ने उसे अपने ही हाथों से श्री रंगनाथ जी को धारण कराने की आज्ञा दी -

सन्त आज्ञा पाइकै निसंक गई मन्दिर में
फिरी यौं ससंक धिक् तिया धर्म भीजिये।

किन्तु विकर्मो का विपाक ही था कि मन्दिर देहरी पर चरण रखते ही वह रजोधर्म हो जाने से मुकुट धारण कराने के योग्य न रही, इस पर जब वह लौटने लगी तो -

बोले आप याकों ल्याय आप पहराय जाय,
दियौ पहिराय नयौ सीस मति रीझियै।।

(भक्तिरसबोधिनी, कवित्त - २५२)

भगवान् ने पुजारियों के हाथ से मुकुट धारण न किया, यह कहकर कि हम तो उसके ही हाथ से धारण करेंगे।

तब तो पुजारियों ने कहा - प्रभो! यह तो बहुत बड़ी अनीति होगी। एक तो वैश्या, उसमें भी रजस्वला फिर वह आपका स्पर्श करे। श्री रंगनाथ भगवान् ने किसी की भी ओर ध्यान न देते हुए मुकुट धारण करने को उस वैश्या के सम्मुख अपना मस्तक झुका दिया।

२५२ वैष्णव वार्तानुसार -

यमुना किनारे रावल के समीप गोपालपुर में श्री गुसांईजी के कृपापात्र मेहा धीमर रहते थे।

एक समय मेहा की स्त्री ने पुत्र को जन्म दिया। उस समय मेहा स्वयं किसी आवश्यक कार्य से बाहर गये हुए थे। पुत्र के जन्म से अशौच हो जाने पर स्त्री को भगवद् सेवा छूटने का अपार कष्ट हुआ।

हाय! इस दुष्ट पुत्र के होने से मेरी भगवद् सेवा छूट गयी - कहकर रुदन करने लगी। तब स्वयं श्री ठाकुर जी ने मेहाधीमर की स्त्री को आज्ञा दी - 'रो मत, स्नान करके मेरी सेवा कर।' इस पर जब वह स्नान करके सेवा करने लगी तब तक मेहा आ गये, अशौचावस्था में भगवद् सेवा करते देख रोका तो स्त्री ने कहा - स्वयं भगवान् ने मुझे सेवा की आज्ञा की है, यह सुनकर मेहा अत्यन्त प्रसन्न हुए।

८४ वैष्णव वार्तानुसार -

इसी प्रकार श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभु के कृपापात्र दामोदरदास वैष्णव की माँ वीरबाई को जब पुत्रोत्पन्न हुआ तो भगवत्सेवा छूट जाने का अपार कष्ट हुआ।

दिन चढ़ आया किन्तु किसी ने ठाकुरजी को जगाया नहीं, तब वह रोने लगीं - यह पापी पुत्र कहाँ से हो गया, मेरी ठाकुर सेवा छूट गयी। उन्हें रुदन करते हुए देखकर, शय्या से ठाकुर जी बोले - वीरबाई! रोने की आवश्यकता नहीं, आकर मुझे जगाओ।

किन्तु मैं तो पुत्र जन्म के अशौच में पड़ी हूँ, आपका स्पर्श करने योग्य नहीं हूँ, वीरबाई ने कहा।

तब स्वयं भगवान् ने आज्ञा की - शरीर में गोबर लगाकर स्नान करके तुम ही मुझे जगाओ। मैं अन्य किसी से सेवा नहीं कराऊँगा। यह मेरी आज्ञा है अतः कोई अपराध नहीं लगेगा। तब वीरबाई ने ऐसा ही किया। इस प्रकार घर में अन्य परिवारी जनों के रहते सूतक, पिंडरू व ऋतुकाल में भी वीरबाई से श्रीठाकुरजी अपनी सेवा कराते।

रसिक-अनन्य-परचावली के अनुसार -

श्रीचाचावृन्दावन दास जी ने लिखा है -

अति लघु जाकी बैस नामसेवा पधराई।
श्रीरूपलाल गुरु कृपा भक्ति फल फली महाई।।
इक दिन सेवा पिता करी प्रभु सैन करायौ।
धनि अबला की भक्ति इष्ट तापै चलि आयौ।।

एक विष्णीबाई नाम की भक्ता हुई हैं। ये आगरा के वैश्य दयालदासजी की पुत्री थीं। इनके गुरुदेव श्रीहितरूपलाल जी ने अल्पायु में ही इनको उपासना के लिए नाम-सेवा नामक मूर्ति दे दी थी। वह नाम-सेवाजी में इतनी आसक्त हो गयीं कि रात्रि के समय भी नाम-सेवा जी को साथ में रखकर शयन करती थीं। एक दिन रजस्वला होने के कारण ये सेवा न कर सकीं तो इनके पिता ने 'नाम-सेवा जी' की सेवा की और ठाकुर जी को विष्णीबाई से अलग शय्या पर शयन करा दिया किन्तु दैहिक अपवित्रता का ध्यान न रखते हुए विष्णी के प्रेमवश ठाकुर जी अपनी शय्या से उठकर विष्णीबाई के पास पहुँच गये।

कथनाशय है कि कर्ममार्गियों को अवश्य ही धर्मशास्त्रों में वर्णित शौचाचार का पालन करना चाहिये किन्तु वैष्णव-धर्म में यह सब अपेक्षित नहीं है। वीरबाई एवं रजोदर्शन 'सद्या प्रसूता' में वारमुखी का रंगनाथ को मुकुट धारण कराना क्या प्रमाण नहीं है?

श्रीमद्भागवत में उत्तरा के गर्भ में भगवान् का प्रवेश भी परम प्रमाण है। भक्तिहीन पुरुष ही श्रीभगवान् और श्रीमद्भागवत पर भी अपने संकीर्ण विचार आरोपित करते हैं। उन्हें भगवान् के ये वाक्य भी समझ में नहीं आते हैं।

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम्।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्।।

(श्रीमद्भागवत ११/१४/२१)

मैं सन्तों का प्रिय और आत्मा हूँ, मेरी प्राप्ति श्रद्धा व अनन्य भक्ति से ही होती है। मेरी अनन्य भक्ति में यह सामर्थ्य है कि वह जन्मजात चाण्डाल को भी अत्यन्त पवित्र बना देने वाली है।

धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता।
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि।।

(श्रीमद्भागवत ११/१४/२२)

भक्तिहीन को सत्य, दया, तपस्या एवं विद्या भी भलीभाँति पवित्र नहीं कर सकेगी, इस दृष्टि से तो संकीर्ण विचारकों से भक्तियुक्त चाण्डाल भी श्रेष्ठ है। स्वयं भगवान् श्रीराम ने शबरी के प्रति कहा -

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई।।
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा।।

(श्रीरामचरितमानस, अरण्यकाण्ड - ३५)

भक्तिहीन मनुष्य जलहीन बादल की भाँति शोभाहीन है। भक्ति में जातिगत विषमता का कोई स्थान नहीं है।

सहज अपावन नारी की पावनता

जहाँ तक स्त्री की दैहिक अपावनता के कारण उसे वैदिक व स्मार्त धर्मो से बहिष्कृत किया गया है, ऋतुकाल में वह वैदिक कार्यो को करने के योग्य नहीं है किन्तु ध्यान रहे स्त्री धर्म की यह अपावनता तो स्वयं महाशक्तियों में भी दिखाई देती है जैसे अयोनिजा द्रौपदी में, स्वयं भगवती सती के देह में और श्रीकृष्ण की रानी-पटरानियों में भी।

जिस समय शिव से परित्यक्त भगवती सती ने प्राणत्याग किया और उस निष्प्राण देह को लेकर विरही शिव नृत्य करने लगे, उस समय जहाँ-जहाँ भगवती के देह-खण्ड गिरे, वे स्थान महातीर्थ और मुक्तिक्षेत्र के रूप में विख्यात हुए।

ये सभी शक्ति स्थल आज भी सिद्धपीठ के रूप में हैं (जैसे अलोपी बाग, इलाहाबाद शक्तिपीठ में हाथ की उँगली गिरी, जहाँ वे ललिता शक्ति के रूप में हैं। ज्वालामुखी में जिह्वा गिरी, वहाँ देवी सिद्धिदा के रूप में हैं। कश्मीर में कण्ठ गिरा, जहाँ वे महामाया के रूप में हैं। उज्जयनी में कुहनी गिरी, जहाँ मंगल चण्डिका के रूप में हैं एवं कामगिरि में योनिभाग गिरा जहाँ वे कामाख्या के रूप में हैं।

पीठानि चैकपञ्चाशदभवन्मुनिपुङ्गव
अङ्गप्रत्यङ्गपातेन छम्यासला महीतले।
तेषु श्रेष्ठतमः पीठः कामरूपी महामते।।

(देवी पुराण शक्तिपीठांक - १२/२९, ३०)

श्री महादेव जी ने कहा - इस प्रकार सती के अङ्ग-प्रत्यङ्ग गिरने से इक्यावन शक्तिपीठ हुए जिनमें कामरूप (कामाख्या) सर्वश्रेष्ठ शक्तिपीठ है।

अङ्गेषु भगवत्यास्तु योनिः श्रेष्ठतमा याः।
योनिरूपा हि सा देवी सर्वासु स्त्रीष्ववस्थिता।।

(देवी पुराण शक्तिपीठांक - ७७/१९)

भगवती के सभी अंगों में योनि-अंग सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि वो देवी योनिरूप में सभी स्त्रियों में अवस्थित हैं।

तत्र गत्वा महापीठे स्नात्वा लोहित्यवारिणी।।

(देवी पुराण शक्तिपीठांक - १२/३१)

आज भी त्रिदिवसीय धर्म में कामरूप (कामाख्या) के जल में कुछ लालिमा आ जाती है, उस समय वहाँ स्नान करने से ब्रह्महत्या के पाप से भी सद्यः मुक्ति हो जाती है।

न केवल भगवती, श्रीकृष्णकी रानियों में भी सामान्य स्त्रियों के धर्म देखे गये। श्रीकृष्णके द्वारका-प्रस्थान पर हस्तिनापुर की नारियों ने परस्पर कहा -

एताः परं स्त्रीत्वमपास्तपेशलं निरस्तशौचं बत साधु कुर्वते।

(श्रीमद्भागवत १/१०/३०)

हे सखि! ये रानी-पटरानी धन्य हैं इन्होंने श्रीकृष्ण को प्राप्त करके अपने स्त्रीत्व को धन्य कर दिया। जो स्त्री शरीर अपास्तपेशल अर्थात् स्वतन्त्रता रहित है, निरस्तशौच अर्थात् पवित्रता रहित है।

जब श्रीकृष्ण पत्नी भी सामान्य स्त्रियों की भाँति स्वतन्त्रता एवं पवित्रता से रहित हैं तब तो शबरी का स्वयं के लिए यह कहना उचित ही था -

अधम ते अधम अधम अति नारी।
तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी।।

(श्रीरामचरितमानस, अरण्यकाण्ड - ३५)

किन्तु ध्यान रहे, भक्ति के प्रताप से "सहज अपावनि नारि" को वह पवित्रता प्राप्त हुई जो स्वयं भगवान् को भी प्राप्त न हो सकी।

अधिक बढ़ावत आपते, जन महिमा रघुबीर।
शबरी पद रज परसते शुद्ध भयो सरनीर॥

जो सर स्वयं श्रीराम के चरण स्पर्श से भी शुद्ध न हो सका, वही शबरी के चरण स्पर्श से शुद्ध हो गया।

भागवत-धर्म के ज्ञाता श्रीमतंग मुनि ही इस 'सहज अपावन नारि' की महिमा को जानते थे अतः उन्होंने दण्डकारण्यवासी ऋषि-मुनियों की परवाह न करते हुए एक भीलनी शबरी को अपने आश्रम में रहने के लिए स्थान दिया। यद्यपि ऐसा करने से अन्य वैष्णव-धर्म से अनभिज्ञ ऋषि-मुनियों ने उनकी बड़ी निन्दा की -

तब मतंग निंदन बहु करहीं। शबरी दोष ताहि शिर धरहीं।।
जानहिं नहिं हरि भक्त प्रभाऊ। जाति भेद महँ राखहिं भाऊ।।
जातिभेद वैष्णव जो कीन्हों। सो सब पाप शीश धरि लीन्हों।।
जिहि मुख कढ़ै नाम सियपीको। श्वपचहु सो ब्राह्मण ते नीको।।
तपी व्रती द्विज भक्ति विहीना। सो श्वपचहु ते अहै मलीना।।

किन्तु जब स्वयं भगवान् श्रीराम ने उन्हें यह बोध कराया -

मतङ्गमुनिविद्वेषाद् रामभक्तावमानतः।
जलमेतादृशं जातं भवतामभिमानतः।।

(अध्यात्मरामायण)

'मतंग मुनि के साथ द्वेष करने तथा शबरी जैसी रामभक्ता साध्वी का अपमान करने के कारण आपके अभिमानरूपी दुर्गुण से ही यह सरोवर इस दशा को प्राप्त हो गया है।'

इसके फिर पूर्ववत होने का एक यही उपाय है कि शबरी एक बार फिर से इसका स्पर्श करे।

पुनि शबरी समीप सब आए। पगपरि तिहि लै गये लिवाए।।
शबरी सकुचि सलिल पगडारी। तुरतहिं भो निर्मल सर वारी।।

(रामरसिकावली)

तब सभी ऋषि-मुनि दैन्यतापूर्वक शबरी जी के समीप आये और उनके चरण पकड़ लिए तथा उनसे सरोवर में अपने चरण स्पर्श कराने की प्रार्थना की।

शबरी जी ने सकुचाते हुए जाकर जैसे ही सरोवर में अपने चरण का स्पर्श कराया वह पूर्ववत् निर्मल हो गया।

अब कहाँ गई स्त्री की अपावनता? बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को शबरी जी के चरण पकड़ना पड़ा।

यही तो गोपियों के विषय में भी कहा गया है -

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः
कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः।

(श्रीमद्भागवत १०/४७/५९)

कहाँ ये वनचरी, व्यभिचार से दूषित स्त्रियाँ और कहाँ इनका श्रीकृष्ण में अनन्य प्रेम। इनके प्रेमवश श्रीकृष्ण इनके नचाने पर नाचते थे, इनकी इच्छा पूरी करने के लिए ही माखनचोरी करते थे। उद्धवावतार श्रीसूरदास जी ने भी लिखा है -

यह लीला सब स्याम करत हैं, ब्रज जुवतिनि कैं हेत।
'सूर' भजै जिहिं भाव कृष्ण कौं, ताकौं सोई फल देत॥

अतः उद्धव जी बोले कि धन्य हैं ये नन्दबाबा के व्रज में रहने वाली गोपाङ्नाएँ, मैं इन ब्रजस्त्रियों की चरणरज-वन्दना करता हूँ, इन गोपियों ने भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाकथा के सम्बन्ध में जो कुछ गान किया है, वह तीनों लोकों को पवित्र कर रहा है और सदा-सर्वदा पवित्र करता रहेगा।

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्।।

(श्रीमद्भागवत १०/४७/६३)

यहाँ तक कि स्वयं भगवान् भी जब मर्त्यलीला के उपयुक्त देह धारण करते हैं अर्थात् नरावतार लेते हैं तो उनमें सामान्य मनुष्य जैसे धर्म दिखायी पड़ते हैं। मर्त्यावतार में प्राकृत धर्म -

सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड - २२७)

सकल अर्थात् बाह्याभ्यन्तर सभी प्रकार की पवित्रता के पश्चात् श्रीराम जी ने स्नान किया।

पुनः

सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान बट छीर मगावा॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड - ९४)

इसी प्रकार कृष्णावतार में -

एवं धार्ष्ट्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ
स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथाऽऽस्ते।

(श्रीमद्भागवत १०/८/३१)

गोपियों ने कहा - कन्हैया इस प्रकार की ढिठाई करता है कि हमारे लिपे-पुते स्वच्छ घर में मेहनादीनि अर्थात् मूत्रादि त्याग देता है।

टीकाकारों ने और स्पष्ट करते हुए कहा -

श्वास्तौ देवपूजार्थमामृष्टलिप्तभूमौ मेहनादीनि
मूत्रपुरीषोत्सर्गादीनि धार्ष्ट्यान्युपद्रवान्॥

(श्रीमद्विश्वनाथचक्रवर्तिकृता सारार्थदर्शिनी)

'उपविश्य च वास्तौ देहल्यादौ मेहनादीनि पुरीषोत्सर्जनादीनि करोति।' (श्रीमद्विजयध्वजतीर्थकृता पदरत्नावली)

प्रायः सभी आचार्य महानुभावों ने यही अर्थ ग्रहण किया है।

"कन्हैया हमारे स्वच्छघर में मल-मूत्र त्याग देता है।"

आप कहेंगे कि इस सच्चिदानन्दमय वपु में मल-मूत्र कैसे सम्भव है? तो इसका समाधान है -

तुम जो कहहु करहु सब सांचा।जस काछिअ तस चाहिअ नाचा।।

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड - १२७)

वे जो कुछ कहते हैं, करते हैं, वह सब सत्य है और फिर स्वांग के अनुसार नृत्य भी तो आवश्यक है। मर्त्यलीला में मर्त्योचित व्यवहार ही उचित है।

जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिन्धु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड - १०१)

जिसके एक बार नाम स्मरण मात्र से मनुष्य अपार भवसागर पार हो जाता है, वह स्वयं नदी पार होने के लिए नाव की प्रतीक्षा में है।

कैसी मानवीयता।

मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जलु पिअत मुदित मन भयऊ।।
सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू। तेहि श्रम यह लौकिक ब्यवहारू।।

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड - ८७)

स्नान करने पर मार्ग की श्रान्ति दूर हो गई एवं गंगा का पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया।

जिनके स्मरण मात्र से जन्म-मरण का श्रम दूर हो जाता है, उनका श्रमित होना यही तो नररूप के उपयुक्त स्वांग है।

मानवीय स्वांग का हेतु?

सुद्ध सचिदानंदमय कंद भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु।।

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड - ८७)

प्राणीमात्र का संसार सन्तरण ही इन लीलाओं का एकमात्र प्रयोजन है।

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे।

(श्रीमद्भागवत १/९/३८)

भीष्म के तीक्ष्ण बाणों से श्रीकृष्ण का कवच टूट गया एवं सम्पूर्ण शरीर रक्त से लथपथ हो गया।

यह रक्त मानवीय विकार ही है।

श्रीकर्दम जी ने कपिल भगवान् के समक्ष कहा -

तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव।
यानि यानि च रोचन्ते स्वजनानामरूपिणः।।

(श्रीमद्भागवत ३/२४/३१)

यद्यपि आप अरूपी अर्थात् प्राकृत रूप से रहित हैं। अलौकिक रूप वाले होते हुए भी आपके जो-जो स्वरूप भक्तों को प्रिय लगते हैं, आप उन्हें ही धारण करते हैं क्योंकि आपको स्वयं भी भक्तों को प्रिय लगने वाले रूप ही प्रिय हैं। यही श्रीशुकदेव जी ने कहा -

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्।।

(श्रीमद्भागवत १०/३३/३७)

भगवान् ने तादृशी लीलाएं कीं क्योंकि जीव की स्वाभाविक प्रवृत्ति विकर्मों में होने से उन लीलाओं को वह सहज में ही समझ सकता है व उनके कथन-श्रवण से मत्परायण हो सकता है।

यद्यपि 'परदाराभिमर्शन' धर्म विरुद्ध आचरण होते हुए भी विकर्म नहीं बना क्योंकि यह इन्द्रिय प्रीति अथवा इन्द्रिय तृप्ति के लिए होने वाला कर्म नहीं था। इन्द्रिय प्रीत्यर्थ कर्म विकर्म है फिर ये तो

आत्माराम, आप्तकाम ठहरे, इन्हें किसी से रमण और विहार की क्या इच्छा होगी? यह सब तो उनकी अनुग्रहकातरता (कृपा करने की विकलता) है।

अनुग्रहपरवश होकर ही वे तादृशी क्रीडा करते हैं, जिसके लिए कहीं-कहीं आर्य वैदिक मर्यादाओं से भी उसका विरोध हो जाता है।

कृपातिशयता ही तो थी भीष्म के लिए शस्त्र उठाने और वेदवाणी को मृषा करने में।

जिन गोपाल मेरो पन राख्यो मेटि वेद की कान।
सोई सूर सहाय हमारे निकट भये हैं आन।।

(श्रीसूरदास जी)

भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥

(श्रीमद्भागवत १०/३३/३७)

तादृशी अर्थात् वैसी ही लीलाएं कीं जैसी हमारी प्रवृत्ति है, जिससे कृष्ण परायण होने में हमें कठिनाई का अनुभव न हो।

चराचर जगत काम के वशीभूत है। सामान्य जनों की बात छोड़िये स्थिति यह है कि -

पण्डितास्तु कलत्रेण रमन्ते महिषा इव।
पुत्रस्योत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्तिसाधने।।

(श्रीमद्भागवत माहात्म्य १/७५)

बड़े-बड़े पण्डितों को भोग के लिए भैंसा बनते देखा जाता है अतः प्रतीपाचरण भी किया भगवान् ने, जिसे सुनकर परीक्षित को मोह हो गया और पूछ बैठे -

स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम्।।

(श्रीमद्भागवत १०/३३/२८)

१६,१०८ रानियों के साथ भी इस प्रकार के विहार का वर्णन प्राप्त नहीं होता है। "परदाराभिमर्शन" जैसा गोपियों के साथ हुआ है अत एव उन्हें चौरजार शिखामणि कहा गया। ऐसा चोर और ऐसा जार पुरुष आज तक नहीं हुआ।

कृष्णावतार से विषइयों का उद्धार भी हो जायेगा। विषयी भी इन लीलाओं को गायेंगे।

भव सागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा॥
बिषइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा। श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - ५३)

यह लीला चरित्र ही ऐसा है कि विषइयों को भी सुनने में अच्छा लगता है, कानों को सुख देता है।

आज सिनेमा के कलाकार भी तो गाते हैं -

"यशोमति मैया से पूछे नन्दलाला....."

जिस समय गोस्वामी तुलसीदासजी ने एक गो हत्यारे को भगवन्नाम से शुद्ध कर अपने साथ भोजन कराया, उस समय रुष्ट होकर काशी के विद्वत् समाज ने उन्हें बहिष्कृत कर दिया जबकि श्रीमद्भागवत में शुकाचार्य का कथन है -

ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाऽऽचार्यहाघवान्।
श्वादः पुल्कसको वापि शुद्ध्येरन् यस्य कीर्तनात्।।

(श्रीमद्भागवत ६/१३/८)

ब्राह्मण, पिता, गो, माता, आचार्य की हत्या करने वाले महापापी भी भगवन्नाम-संकीर्तन से शुद्ध हो जाते हैं।

हयमेधेन पुरुषं परमात्मानमीश्वरम्।
दृष्ट्वा नारायणं देवं मोक्ष्यसेऽपि जगद्वधात्।।

(श्रीमद्भागवत ६/१३/७)

एक ब्राह्मण और गो का वध करने वाला ही नहीं सम्पूर्ण संसार का वध करने वाला महापातकी भी भगवद्-आराधन से पातक-मुक्त हो जाता है। किन्तु संकीर्ण, नास्तिक और अश्रद्धालु जन इन सिद्धान्तों को कभी नहीं समझ सकते, वे भले ही आजीवन कथा कहें अथवा सुनें।

श्रीमद्भागवत का अन्तिम उद्घोष है -

नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्।।

(श्रीमद्भागवत १२/१३/२३)

भगवन्नाम से सर्वपाप अर्थात् सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं।

क्या सर्वपाप में रजोदर्शन रूप ब्रह्महत्या की शुद्धि नहीं होगी?

स्त्रियों में भी अमर्यादित भोग है जिनका, उन वेश्याओं को भगवान् ने अपने हृदय में स्थान दिया।

गनिका अरु कंदरप ते जगमहँ अघ न करत उबरयो।
तिनको चरित पवित्र जानी हरि निज हृदि-भवन धरयो।।
केहि आचरन भलो मानैं प्रभु सो तौ न जानि परयो।
तुलसिदास रघुनाथ-कृपा को जोवत पंथ खरयो।।

(तुलसी विनय पत्रिका-२३९)

गणिकाएं - जीवन्ती, सुमध्या, कान्हूपात्रा, चिन्तामणि, रूपमती, रामजनी, पिंगलादि इसका प्रमाण हैं।

अस्तु मासिक धर्म के कारण स्त्री व्यास पीठ पर बैठकर कथा नहीं कह सकती है, इस प्रकार की बातें भागवत धर्म के प्रति अश्रद्धा, अविश्वास को प्रकट करती हैं।

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

(शिक्षाष्टकम्)

वैष्णव धर्म ने वैदिक धर्म मर्यादाओं के तट बन्धनों को तोड़कर भगवन्नाम की सबको अधिकारिता प्रदान की, जिससे विश्व में शान्ति व सद्भाव की वृद्धि हुई।

धन्य हैं वे धर्मप्रचारक व धर्म प्रचारिणी संस्थाएं जिनके द्वारा सम्पूर्ण विश्व में भगवन्नाम रूप वैष्णवधर्म का प्रचार-प्रसार हुआ व हो रहा है।

धन्य हैं श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद जी व उनका अन्तर्राष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ (ISKCON), जिसके द्वारा सम्पूर्ण विश्व भर में भगवन्नाम-वैष्णवधर्म की अलख जागी।

यही है श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की सच्ची सेवा।

श्रीमद्भागवत वैष्णव ग्रन्थ है। वेदवृक्ष का फल होते हुए भी

यह कर्मप्रधान नहीं है अतः -

न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम्॥

(श्रीमद्भागवत ७/७/५२)

श्रीमद्भागवत का इसी दृष्टि से अध्ययन व अनुशीलन होना चाहिए। यदि यहाँ भी कर्मप्रधान दृष्टि रही तो फिर श्रेष्ठ कर्मकाण्डी कर्मविद् ब्राह्मणों की भाँति पश्चाताप ही हाथ लगेगा। कर्मकाण्ड से यदि ब्राह्मण कृतार्थ हो जाते तो अपने कुल, पवित्रता और वेदाध्ययन को क्यों धिक्कारते?

क्या उनकी याज्ञिकता में भी कोई संदेह था?

अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः।
भक्त्या यासां मतिर्जाता अस्माकं निश्चला हरौ।।

(श्रीमद्भागवत १०/२३/४९)

वे कर्मकाण्डी विप्र कृतार्थ हुए भक्ता स्त्रियों को प्राप्त करके।

भक्ति से "सहज अपावन नारि" में बड़े-बड़े वेदपाठी, याज्ञिकों को पवित्र करने की सामर्थ्य आ जाती है।

स्वामी हरिदास जी के शिष्य श्रीबिहारिन देव जी ने लिखा -

बैयरि सी बैरिनि नहीं, ना मिहरी सी मीत।
ममता करै सो नरक परै, भक्ति करै जग जीति।।

स्त्री से बड़ा कोई शत्रु नहीं और हितैषी भी स्त्री से बड़ा कोई नहीं, अगर भोग्या समझकर ममता करोगे तो नरक में जाओगे और अगर देवी भाव रखकर भक्ति करोगे तो सारे संसार को जीत लोगे।

इसी सिद्धान्त के अनुसार अनेकों भक्तों ने "सहज अपावन नारि" की वन्दना की। यथा -

निज तिय में तिय भाव तजि नृप लीन्हों गुरु मानि।
अस गणेशदे रानि को लेहु सबै जन जानि।।

(श्रीरामरसिकावली)

फिर्‌यौ आस-पास भूमि पर तन रास करी
भक्तिकौ प्रभाव छाँड़ि तिया पति सर्म है।

(भक्तिरसबोधिनी कवित्त ३१८)

ओरछा नरेश श्रीमधुकरशाह जी रानी गणेशदेई जी की सन्तों के प्रति अपार निष्ठा को प्रतीत कर अति ही प्रभावित हुए और इन्होंने अपने पति-पत्नी भाव की मर्यादा एवं संकोच का परित्याग कर, भक्ति का प्रभाव विचारकर निज रानी श्रीगणेशदेई जी की परिक्रमा की और पृथ्वी पर लेटकर रानी जी को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

इसी तरह -

पर्‌यौ बधू पाँय तेरी लीजियै बलाय
पुत्र शोक को मिटाय और खरी अभिलाषियै।।

(भक्तिरसबोधिनी कवित्त २२१)

श्रीसदाव्रती महाजन जी अपनी स्त्री की भक्ति-भरी इस बात को सुनकर उसके पैरों में गिर गये और बोले - मैं तेरी बलायें लेता हूँ, तुमने पुत्रशोक को मिटाकर बहुत अच्छी इच्छा प्रकट की, सच्ची संत-भक्ति को प्राप्त करने की चाहना की।

इसी प्रकार -

महापुरुषों ने राजा बलि से ज्यादा उनकी स्त्री विन्ध्यावली जी की भक्ति की प्रशंसा की -

विन्ध्यावली तियासी न देखी कहूँ तिया
नैन बाँध्यो प्रभु पिया देखि किया मन चौगुनौ।
करि अभिमान दान देन बैठ्यौ तुमहीं को
कियो अपमान मैं तो मान्यों सुख सौगुनौ।

(भक्तिरसबोधिनी, कवित्त - ८७)

दो पग में त्रिलोकी ले लेने के बाद भी भगवान् ने राजा बलि को संकल्प पूरा न कर पाने के कारण बंदी बना लिया था किन्तु विन्ध्यावली जी अपने पति को भगवान् द्वारा बाँधा हुआ देखकर भी जरा भी दुखी नहीं हुई अपितु मन में अति प्रसन्न हुई और भगवान् से बोलीं - 'हे प्रभो! यह राजा आपका सेवक होकर, मैं बड़ा दाता हूँ इस अभिमान के वश अपने को दानी और अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड के स्वामी आपको तुच्छ भिक्षुक मानकर दान करने बैठ गया। आपने जो कृपा रूप दण्ड देकर इसके अभिमान को चूर किया, इससे मैंने सौगुना सुख पाया।'

इसी तरह -

राजा अम्बरीष जी, जिनके अपराध के कारण साक्षात् शिवांश श्रीदुर्वासा जी को भगवान् ने शरण नहीं दी, जिनकी अनन्य भक्ति का प्रभाव सर्वत्र विख्यात है, उनकी छोटी रानी भक्ति में उनसे भी आगे निकल गई। श्रीमद्भागवत में श्रीशुकदेव जी ने उसकी प्रशंसा की -

'महिष्या तुल्यशीलया'

(श्रीमद्भागवत ९/४/२९)

भक्ति-विरक्ति में वह अम्बरीष से अणुमात्र भी कम नहीं थीं।

अम्बरीष जी जो कार्य नहीं कर पाए वह उन्होंने करके दिखाया। उनकी अन्य समस्त रानियों को एवं सारी प्रजा को रानी ने अपनी भक्ति के प्रताप से भक्त बना दिया। जो भागवत में लिखा -

दूरे हरिकथाः केचिद् दूरे चाच्युतकीर्तनाः।
स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकम्प्या भवादृशाम्।।

(श्रीमद्भागवत ११/५/४)

यह उसने चरितार्थ किया। रानी की कृपा से श्रीअयोध्या में सबके घर चूल्हा-चक्की चेतना बन्द हो गया। लोग प्रसाद से ही तृप्त हो जाते और अखण्ड नाम-संकीर्तन, कथा-सत्संग का अलौकिक आनन्द लेते।

रंगी प्रेम रंग सों नृपरानी। तजी लाज अरु कुल की कानी॥
बोलि सकल पुर के हलवाई। लगी रचावन ढेर मिठाई॥
प्रतिदिन हरि को लागत भोगू। आवैं सकल नगर के लोगू॥
पावहिं सकल कृष्ण परसादा। गावहिं सुजस सहित अहलादा॥
पुनि डौंड़ी पुर महँ पिटवाई। आवै इत पुरजन समुदाई॥
जोए हैं प्रसाद सो पैहैं। विमुख कोउ इत ते नहिं जैहैं॥
यह सुनि पुरजन दिवस प्रति, हरि दरशन को लेन।
रानी मन्दिर आवहीं, पावहिं अतिशय चौन॥

(श्रीरामरसिकावली)

इसी तरह रानी रत्नावती जी की भक्ति की प्रशंसा में श्रीनाभा जी लिखते हैं -

पृथीराज नृप कुलबधू भक्तभूप रतनावती।।
कथा कीरतन प्रीति भीर भक्तनि की भावै।
महा महोच्छौ मुदित नित्य नन्दलाल लड़ावै।।

(श्रीभक्तमाल, छप्पय - १४२)

इनके पति आमेर नरेश माधौसिंह जी इनकी भक्ति से अपरिचित थे अत: उन्होंने इनमें दोष विचार करके इन्हें मारने का प्रयत्न किया। मारने के लिए सिंह भेजा किन्तु रत्नावती जी ने उस सिंह में नरसिंह भगवान् का भाव करके उसकी पूजा की, उस सिंह ने कुछ निंदकों को भी मार डाला, तब माधौसिंह इनकी विशुद्ध भक्ति को समझे और उन्होंने '**भूमि पर साष्टांग करी**' (भक्तिरसबोधिनी, कवित्त - ५५७) अपनी स्त्री रत्नावती जी को भूमि पर लेटकर साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया।

इसी तरह चित्तौड़ की महारानी श्रीमीराबाई जी ने अपनी भक्ति के प्रभाव से सारी राज्य सत्ता को झुका दिया। राणा सांगा के पूर्वज जो दुर्गति को प्राप्त हुए थे, भूत बनकर महल में वास कर रहे थे, श्रीमीरा जी की भक्ति से उनका उद्धार हुआ। हिन्दुस्तान के बादशाह अकबर की प्राण रक्षा सिर्फ एक स्त्री मीरा जी के दर्शन मात्र करने से हो गयी -

जादिन मीरा दरश करि, अकबर आयो धाम।।
तादिन कोउ अकबर ऊपर, करिकै मारन काम।।
पुरश्चरण अतिघोर किय, हनूमान को ध्याय।
पवनपूत कोपित महा, तुरत आगरे आय।।
अकबर को मारन गयो, धारे गदा कराल।
तहँ ठाढ़े देखत भयो, दोऊ दशरथलाल।।
तब प्रभुपद शिरनायकै, आयो लौटि तुरंत।
करता के शिर देत भो, गरू गदा हनुमंत।।
यह मीरा के दरश को, जानहु सकल प्रभाव।
मरत भयो अकबर अमर, राखि लियो रघुराव।।

(श्रीरामरसिकावली)

यह सब 'सहज अपावन नारि' की शक्ति का ही चमत्कार है। कोई विमुख व्यक्ति यदि इन स्त्री भक्ताओं को अपावन समझता है तो वह महानीच, महापापी और महा अधम है।

श्रीपीपा जी से आगे भक्ति में उनकी स्त्री सीता सहचरी जी निकल गयीं। स्वयं पीपा जी ने उनकी भक्ति की सराहना की -

पीपा जी कहीं गए थे, उसी समय कुछ संत कुटिया पर पधारे। सीता जी अकेली थीं, कुटी में अन्न-धन कुछ भी नहीं था, अत: संतसेवार्थ सामग्री लेने वह एक बनिए की दुकान पर गयीं, वह कामी वणिक इनके रूप पर मोहित हो गया और उसने सामग्री इस शर्त पर दी कि तुम्हें रात्रि में मेरे पास आना पड़ेगा। वे उसकी शर्त मानकर सामग्री ले आईं, रसोई बनाई और संतों को प्रसाद पवाने लगीं, उसी समय पीपा जी आ गए , उन्होंने पूछा कि सामग्री कहाँ से आई, सीता जी ने सब सच-सच बता दिया। श्रीपीपा जी ने उनकी संत सेवा-निष्ठा देखकर - '**वारे तन प्रान**' अपने शरीर और प्राणों को उनपर न्यौछावर कर दिया।

इसी तरह श्रीचैतन्यमहाप्रभु जी के लाड़ले श्रीहरिदास ठाकुर की भक्ति की बढ़ती ख्याति से चिढ़कर उनको अपमानित करने के लिए रामचन्द्र खां ने एक वैश्या उनके पास भेजी। गई तो थी वह श्रीहरिदास जी को पथभ्रष्ट करने किन्तु उनकी भक्ति का रंग उस पर चढ़ गया -

प्रसिद्ध वैष्णवी हैला परम महान्त।
बड़-बड़ वैष्णव तांर दर्शनेते जानत।।

(श्रीचैतन्यचरितामृत, अन्त्यलीला ३/१३४)

वह वैश्या अब प्रसिद्ध वैष्णवी एवं परम महान बन गयी। बड़े-बड़े वैष्णव आकर उसके दर्शन कर कृतार्थ होते।

यह भक्ति का प्रताप है कि 'सहज अपावन नारि' के दर्शन करने से बड़े-बड़े वैष्णव अपने को कृतार्थ समझते।

अरे, जिस स्त्री शरीर को लोग अपावन कहते हैं किन्तु भक्ति के कारण उसी 'सहज अपावन नारी' देह को भगवान् ने अपने श्रीविग्रह में लीन कर लिया। यथा -

श्रीमीराबाई जी रणछोड़राय जी में सशरीर लीन हो गयीं।

मीरा को निज लीन्ह कियो, नागर नन्द किशोर।
जग प्रतीति हित नाथ मुख रह्यो चूनरी छोर।।

जब श्रीस्वामी रामानुजाचार्य जी दिल्ली के यवन बादशाह के यहाँ से श्रीसम्पतकुमार भगवान् की प्रतिमा लेकर दक्षिण देश की तरफ चले तो उस बादशाह की शहजादी जिसके पास पूर्व से वह प्रतिमा थी, वह भी श्रीठाकुर जी के बिना रह न सकी, तब स्वामी जी ने उसे भी अपने साथ में ले लिया।

श्रीस्वामी जी के सेवा कर लेने के उपरान्त वह भी रास्तेभर ठाकुर जी को लाड़ लड़ाती जाती थी किन्तु फिर भी उसे व्यवधान होता था अत: भगवान् ने उसके प्रेम को देखकर अपने श्रीविग्रह में उसे लीन कर लिया।

शाहसुता की प्रीति परेषी। नाथ कह्यो तैं रमा विशेषी।।
अस कहि कियो लीन हरि ताको।
लखो मुकुंद प्रभाव कृपाको।।
क्षुद्र जाति यमनी अघखानी। कियो नाथ तेहि रमा समानी।।

तब स्वामी श्रीरामानुजाचार्य जी ने भगवान् की अतिप्रिय भक्ता जानकर उसकी एक सोने की मूर्ति बनवाकर भगवान् के श्रीचरणकमलों के समीप प्रतिष्ठापित करवा दी, जिसका अद्यावधि दर्शन होता है -

नाथ पियारी जानिकै, शाहसुता यतिराय।
ताकी मूरति कनक की, अति सुंदर बनवाय।।
मंत्र प्रतिष्ठा तासु करि हरि चरणन मधि माहिं।
यवन सुता थापित कियो, अबलौं अहै तहाँहिं।।

(श्रीरामरसिकावली)

इसी तरह श्रीवल्लभाचार्य जी के शिष्य श्रीकृष्णदास जी आगरा से एक वेश्या को नाथ जी के सामने नृत्य कराने लाये थे। उन्होंने उसे स्नान कराया, सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत किया और एक पद बनाकर दिया कि तू इसको गाकर नृत्य करते हुए हमारे नाथ जी को रिझा। ठाकुर जी उस पर रीझ गए, उसके अन्त:प्रेम को पहचानकर उसे अंगीकार कर अपना लिया -

नृत्य गान तान भाव भरि मुसक्यान दृग
रूप लपटान नाथ निपट रिझाये हैं।
ह्वैकै तदाकार तन छूट्यौ अंगीकार करी
धरी उर प्रीति मन सबके भिजाये हैं॥

(भक्तिरसबोधिनी कवित्त ३४५)

इसी तरह वेश्या कन्या कान्हूपात्रा को श्रीपण्डरीनाथ जी ने अंगीकार किया।

क्योंकि भागवत-धर्म में स्त्री-पुरुष, वैश्य-शूद्र, वैश्या-पतिव्रता, कुरूप-सुन्दर आदि भेद नहीं चलता है यहाँ तो -

सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा।।
राम बिमुख लहि बिधि सम देही। कबि कोबिद न प्रसंसहिं तेही।।

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - ९६)

अगर भगवान् से विमुख ब्रह्मा जी जैसा शरीर भी है तो वह भी भक्तों के द्वारा अप्रशंसनीय है।

चाण्डालादपि पापी स श्रीकृष्ण विमुखो नरः।

(नारद पांचरात्र २/२/१३)

श्रीकाकभुशुण्डि जी का तो कौवा का देह है और उन्हें इच्छा मृत्यु का वर प्राप्त है किन्तु फिर भी वह काक शरीर का त्याग नहीं करते क्योंकि -

राम भगति एहिं तन उर जामी। ताते मोहि परम प्रिय स्वामी।।
तजउँ न तन निज इच्छा मरना। तन बिनु बेद भजन नहिं बरना।।

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - ९६)

कथनाशय स्पष्ट है कि भागवत-धर्म के प्रभाव से सहज अपावन नारी और अत्यंत पतित श्वपच भी ब्रह्मा-शिवादि के पूजनीय बन जाते हैं।

शुचिः सद्भक्तिदीप्ताग्निदग्धदुर्जाति कल्मषः।
श्वपाकोऽपि बुधैः श्लाघ्यो, न वेदाढ्योऽपिनास्तिकः।।

(हरिभक्ति सुधोदय ३/११)

भगवद्भक्ति रूप प्रज्ज्वलित अग्नि द्वारा जिसके नीचकुल में जन्म होने के कारण होने वाले पाप-समूह भस्मीभूत हो गये हैं, वह सदा पवित्र है। ऐसा श्वपच ही क्यों न हो, वह भी पण्डितों से आदर पाने योग्य है। सर्ववेदों का वेत्ता होकर यदि कोई भगवद्-भक्ति से शून्य है तो किसी के लिये भी वह आदरणीय नहीं है।

हरि को भजै सो है बड़ा जाति न पूँछे कोय।
जाति न पूँछे कोय हरि को भक्ति पियारी।
जो कोई भजै सो बड़ा जाति हरि न निहारी।
पतित अजामिल रहे रहे फिर सदन कसाई।
गनिका विस्या सो विमान पै तुरत चढ़ाई।
नीच जाति रैदास आपु में लिया मिलाई।
लिया गीध को गोद दिया वैकुण्ठ पठाई।
'पलटू' पारस के छुए लोहा कंचन होय।।

शास्त्रों में यह सिद्धान्त जगह-जगह स्थापित है, जिसके अनेक उदाहरण हैं।

श्रौत-स्मार्त धर्म अपने स्थान पर ठीक है किन्तु भागवत धर्म में सभी धर्मों का प्रतिवाद हो जाता है।

सहज अपावनि नारी की ब्रह्मरूपता

बहुधा लोग सनातन धर्म की आलोचना करते देखे जाते हैं। इस धर्म में नारी का सम्मान नहीं कर अत्यधिक निन्दा है जबकि सनातन धर्म में ही नारी को ब्रह्म रूप में स्वीकार किया गया है।

ध्यान रहे, सनातन धर्म के अतिरिक्त अन्य किसी भी धर्म ने आज तक भगवान् को स्त्री रूप में एवं स्त्री को भगवान् के रूप में नहीं देखा; यहाँ ही भगवान् मोहिनी बनते हैं और देवी पुराण में स्वयं शक्ति का कृष्ण रूप में जन्म लेने की कथा वर्णित है।

श्री शिव उवाच -

यदि मे त्वं प्रसन्नासि तदा पुंस्त्वमवाप्नुहि।
कुत्रचित्पृथिवीपृष्ठे यास्येऽहं स्त्रीस्वरूपताम्।।

(दे-पु- ४९/१६)

श्री शिव जी ने कहा - हे देवि! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो पृथ्वी पर कहीं भी पुरुष रूप से अवतरित हों और मैं स्त्री रूप से अवतीर्ण होऊँगा।

श्री देव्युवाच -

भविष्येऽहं त्वत्प्रियार्थं निश्चितं धरणीतले।
पुंरूपेण महादेव वसुदेवगृहे प्रभो।
कृष्णोऽहं मत्प्रियार्थं स्त्री भव त्वं हि त्रिलोचन।।

(दे.पु. ४९/१६)

भगवती ने कहा - हे महादेव! आपकी प्रसन्नता के लिए मैं अवश्य ही वसुदेव के घर श्रीकृष्णके रूप में जन्म लूँगी और हे त्रिलोचन मेरी प्रसन्नता के लिए आप भी स्त्री रूप में जन्म लें।

ततः समभवद्देवी देवक्याः परमः पुमान्।
अष्टम्यामर्धरात्रे तु रोहिण्यामसिते वृषे।।

(दे.पु. ५०/६५)

तत्पश्चात कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को रोहिणी नक्षत्र वृष लग्न अर्ध रात्रि के समय भगवती ने देवकी के गर्भ से परम पुरुष के रूप में अवतार ग्रहण किया।

अतः देवीभागवत में भी वर्णन है -

या सा भगवती नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी।
परात्परतरा देवी यया व्याप्तमिदं जगत्।।

(देवी भागवत २/३६)

श्री भगवान् की ही भाँति भगवती भी षडैश्वर्य सम्पन्ना सच्चिदानन्द रूपिणी परात्पर तत्त्व है, जिस प्रकार ब्रह्म अपनी चिच्छक्ति से सर्वव्यापी है उसी प्रकार भगवती भी जगत के कण कण में व्याप्त है अतः भगवती को भी ब्रह्म कहा गया। नारी शक्ति का इससे अधिक क्या सम्मान हो सकता है? यह ब्रह्मरूप ही सभी अवतारों का आदिकारण है -

रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन
शश्वन्निवृत्ततमसः सदनुग्रहाय।
आदौ गृहीतमवतारशतैकबीजं
यन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम्।।

(श्रीमद्भागवत ३/९/२)

श्री ब्रह्मा जी ने कहा - ब्रह्म का यह रूप तत्त्व की दृष्टि से अवबोध अर्थात् ज्ञानमय है एवं उपासकों की दृष्टि से वह रस रूप है।

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेकमनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम्।
प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति।।

(श्रीमद्भागवत ५/१२/११)

श्री जड़भरत जी ने कहा - न इसके भीतर कोई है न बाहर ही, भीतर बाहर का भाव तो वहाँ होता है जहाँ किसी वस्तु में प्रथकता होती है फिर सब कुछ तो वही है वही भीतर है वही बाहर भी। उसे ही भगवान् कहा गया है एवं उसे ही वासुदेव भी कहा गया है। ब्रह्मा जी ने उसे तात्विक दृष्टि से ज्ञानमय और आस्वाद्यदृष्टि से रसरूप कहा।

नातः परं परम यद्भवतः स्वरूप-
मानन्दमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः।
पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वमात्मन्
भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि।।

(श्रीमद्भागवत ३/९/३)

ब्रह्मा जी ने कहा - हे प्रभो! आपके स्वरूप का मैं दर्शन कर रहा हूँ। आपका तेज जो आनन्द मात्र है, अविकल्प अर्थात् भेद रहित है और उसका तेज अविद्ध है अर्थात् अखण्ड है, यह वही स्वरूप है जो अनन्त संसार की रचना करने वाला है अर्थात् यही निराकार है और यही साकार भी। अनन्तानन्त प्राण, बुद्धि, इन्द्रियों का आधार भी यही है, श्री शंकराचार्य जी के 'गोविन्दाष्टक' से भी यही स्पष्ट होता है -

सत्यं ज्ञानमनन्तं नित्यमनाकाशं परमाकाशम्
गोष्ठप्राङ्गणरिङ्गणलोलमनायासं परमायासम्।
मायाकल्पितनानाकार मनाकारं भुवनाकारम्
क्ष्माया नाथमनाथं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्।।

अनन्त आकार भी वही है और निराकार भी वही है। भुवनाकार अर्थात् अनन्त संसार के रूप में भी वही है, वेदों ने भी इसकी पुष्टि की -

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३/१९)

वह बिना चरण के चलता है, बिना हाथ के पकड़ता है, अचक्षु होकर देखता है और अकर्ण होकर भी सुनता है।

सनातन धर्म अन्य संस्कृतियों की भाँति नारी शक्ति को धकेलने, कुचलने वाला धर्म नहीं है। यहाँ तो नारी को साक्षात् ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया गया है, सम्पूर्ण सृष्टि की उद्भव, स्थिति व संहारकारिणी आद्याशक्ति को पराशक्ति के रूप में स्वीकार किया है।

मीरा, करमैती, रत्नावती ही नहीं दक्षिण में आण्डा (रंगनायकी), आवडयक्काल, इस्लाम में ताज, रबिया, हसीना-हमीदा एवं विदेश की डॉ. ए. नी. बेसेंट, जिनका जन्म आयरलैण्ड व लालन-पालन इंग्लैण्ड में हुआ किन्तु भारत को जन्मभूमि मानने वाली यह महिला सनातन धर्म से बहुत प्रभावित थी। इसी प्रकार रूस की एच.पी.ब्लेवास्तकी, इटली की लोरेन्स, साध्वी मेरी मगडालेन, अवीलाका ओल्ड केसराइल की कुमारी टेरसा, हंगरी की साध्वी एलिजाबेथ, अलक्जेन्डरिया (मिश्रदेश) की देवी सिंक्लेटिका, सायेना, इटली की साध्वी कैथेरीन .....आदि विदेशी महिलायें नारी शक्ति को ब्रह्मरूप में देखने वाली भारतीय संस्कृति से प्रभावित थीं।

जहाँ वैष्णवधर्म ने नारी-शक्ति को इतना सम्मान दिया, वहीं स्मार्त धर्म ने नारी शक्ति को बाँध दिया।

इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारै-
र्लोकान् विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान्।
धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं
छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम्।।

(श्रीमद्भागवत ७/९/३८)

देश, काल, परिस्थिति के अनुसार धर्म में जो परिवर्तन आता है, उसे ही युगानुवृत्त कहा गया है।

वैष्णव धर्म युगानुवृत्त धर्म है किन्तु इसका अर्थ मनमानेपन को धर्म के रूप में सिद्ध करना नहीं है। स्वतन्त्रता है, किन्तु स्वच्छन्दता नहीं। अपने देश व धर्म को सशक्त व समृद्ध बनाने के लिए सम्पूर्ण नारी शक्ति को आगे आना चाहिए।

हमारी आर्य संस्कृति में नारी ही माता के रूप में प्रथम गुरु है। यदि नारी शक्ति प्रबुद्ध होगी तो देश प्रबुद्ध होगा। नारी शक्ति प्रबुद्ध होगी तो प्रत्येक बालक का भविष्य उज्जवल होगा। आलोचकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि किसी स्त्री में सनातन भागवत धर्म का प्रचार करने की क्षमता है तो उसका विरोध करने से निश्चित ही वे भगवत्कोप के भाजन होंगे।

भूलो मत एक रत्नावती के अपराध से सिंह रूप में आये साक्षात् नृसिंह द्वारा आलोचकों को उचित दण्ड प्राप्त हुआ और एक मीरा के अपराध से सारा चित्तौड़ त्राहि-त्राहि करने लगा था।

छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम्

(श्रीमद्भागवत ३/१६/६)

वैष्णवापराध तो यदि उनकी (भगवान् की) अपनी चिन्मयी भुजा भी करती है तो वे उसे भी दण्डित करेंगे।

दूरे हरिकथाः केचिद् दूरे चाच्युतकीर्तनाः।
स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकम्प्या भवादृशाम्।।

(श्रीमद्भागवत ११/५/४)

स्त्री, शूद्र तो विशेष दया के पात्र हैं क्योंकि बार-बार धकेले जाने से ये कथा-कीर्तन से दूर हो गये हैं अतः इनके कथा-कीर्तन की सुविधा का अवश्य ध्यान रखा जाये।

स्वयं जगद्गुरू भगवान् श्रीकृष्ण इस सिद्धान्त के पोषक हैं।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।

(श्रीमद्भगवद्गीता ९/३२)

स्त्री हो अथवा शूद्र, वैष्णव धर्म में सबका समान अधिकार है। परागति की प्राप्ति के सब अधिकारी हैं।

यही सिद्धान्त गोस्वामी तुलसीदास जी की वाणी से भी स्पष्ट

हुआ है -

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड - १८)

'गिरा' शब्द स्त्रीलिंग है व 'अरथ' पुल्लिंग, पुनः 'जल' पुल्लिंग है व 'वीचि' स्त्रीलिंग। कहने-सुनने में भेद है, स्वरूपतः दोनों का अभेद ही है।

फिर बिना शक्ति के कोई उपासना पूर्ण नहीं होगी। भगवान् शिव को अर्द्धनारीश्वर कहा गया। वैष्णवों में भी युगल (शक्ति एवं शक्तिमान) उपासना है।

लक्ष्मी-नारायण, राधा-कृष्ण, सीता-राम, उमा-महादेव ....आदि।

वैष्णव धर्म की उदारता -

सत्सङ्गेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः।
गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः।।
विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः।
रजस्तमः प्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन् युगेऽनघ।।

(श्रीमद्भागवत ११/१२/३,४)

दैत्य-राक्षस, पशु-पक्षी, गन्धर्व-अप्सरा, नाग-सिद्ध, चारण-गुह्यक, विद्याधर, मनुष्यों में वैश्य, शूद्र, स्त्री और चाण्डालादि, राजसी-तामसी प्रकृति के अनेक जीवों ने परमपद की प्राप्ति की। जैसे - वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मयदानव, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, जाम्बवान, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार वैश्य, धर्म व्याध, कुब्जा, ब्रजगोपीजन, यज्ञपत्नियाँ आदि।

इससे सिद्ध होता है कि भगवान् से प्रेम करने के लिए आचार, जाति और ज्ञान की अपेक्षा नहीं होती है। भला, अमृत पीने में भी आचार, जाति और ज्ञान की क्या अपेक्षा?

धिग् जन्म नस्त्रिवृद् विद्यां धिग् व्रतं धिग् बहुज्ञताम्।
धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे।।

(श्रीमद्भागवत १०/२३/३९)

और इसके विपरीत श्रीकृष्णविमुखता में उच्च कुल, ज्ञान, यज्ञ, व्रतादि की भी सार्थकता नहीं है।

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्दएव निखिलात्मनि रूढभावाः।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य।।

(श्रीमद्भागवत १०/४७/५८)

उद्धव जी ने श्रीकृष्ण में प्रेम होने से वनचरियों का जीवन ही सफल माना। इससे रहित होने पर ब्रह्मा का जन्म भी व्यर्थ है।

प्रीतम हू कैं प्रन इहै, प्रीति के बस ह्वै जाहिं।
कोटि धर्म जिन करौ कोउ, तिन तन चितवत नाहिं।।

पुरुष ही कथा कह सकता है, स्त्री को कथा कहने का अधिकार नहीं है, भागवत धर्म की दृष्टि में इस प्रकार की विषम बुद्धि की बात अधर्म ही है। भागवत धर्म में तो -

बड़ी है राम-नाम की ओट।
सरन गएँ प्रभु काढ़ि देत नहिं, करत कृपा कौ कोट।।
बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ौ को छोट?
सूरदास पारस के परसैं मिटति लोह की खोट।।

स्त्रियों के लिए हुआ कृष्णावतार

सहज अपावन होने से श्री व्यास जी ने इन्हें वैदिक अधिकार से बहिष्कृत कर दिया, किन्तु इसका परिणाम शब्द ब्रह्म व परब्रह्म में निष्णात उन महापुरुष के मन में अशान्ति, असन्तोष, अपूर्णता बनी रही। करुणामय भगवान् की दृष्टि में स्त्री, शूद्र कोई भी हेय नहीं है।

यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः।
न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः।।

(श्रीमद्भागवत १/५/९)

नारद जी ने कहा - व्यास जी! आपने धर्म-अर्थादि पुरुषार्थों का जैसा वर्णन किया वैसा श्रीकृष्ण-महिमा निरूपण नहीं किया।

श्रीकृष्ण-महिमा में तो कोई भी हेय नहीं है, उसमें भी कृष्णावतार तो स्त्रियों के लिए ही हुआ है। श्रीवल्लभाचार्य जी ने कहा है -

ये भक्ताः शास्त्ररहिताः स्त्रीशूद्रद्विजबन्धवः।
तेषामुद्धारकः कृष्णः स्त्रीणामत्र विशेषतः।।

'जो भगवद्भक्त स्त्रियाँ, शूद्र और पतित ब्राह्मण शास्त्ररहित हैं अर्थात् वेदबाह्य हैं, उनके उद्धारक श्रीकृष्ण हैं, यहाँ विशेष रूप से स्त्रियों के।'

वेणुगीत में यही कहा गया -

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं
श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणविचित्रगीतम्।
देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा
भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः।।

(श्रीमद्भागवत १०/२१/१२)

आचार्यों ने 'वनितोत्सवरूपशीलं' इस पंक्ति का बहुत सुन्दर भाव स्पष्ट किया है।

केवलं वनितानामेवोत्सवो यत्र वनं यौवनमिताः प्राप्ताः प्राप्तवत्यः वनं सञ्जातमिति वा इतच्प्रत्ययः न हि तत्र प्रविष्टः पुनरावर्त्तते यौवनमित्यत्रापि यु मिश्रणार्थे वन मिति तासामेवोत्सवो भवत्विति भगवता वेषः दृतः सर्वाभरणभूषिताः सर्वा एव वनिताः यथा वेषरसं पुरुषार्थमनुभवन्ति अनेनास्मिन्नुत्सवे यासामलङ्कारादिनोत्सवो न जातस्तासां वनितात्वं व्यर्थमेव यथा रण्डानां तत्रापि चारु मनोहरमन्तरप्यलङ्कारहेतुस्तत्र प्रेमज्ञानादिकमलङ्कारा बहिरिवान्तरपि रसानुभवश्च अनेनाप्सरसां भगवदर्थागमने सर्वोप्युपाय उक्तोनुभावकं ततो विलम्बेन प्रस्थापकमाह-श्रुत्वा चेति।

(श्रीमद्वल्लभाचार्य्यकृता, सुबोधिनी)

श्रीकृष्ण का रूप व शील वनिताओं (युवती स्त्रियों) के लिए ही उत्सव रूप है।

श्रीरामावतार में एक पत्नी व्रत धर्म में बंधे होने से सभी स्त्रियाँ उस परम सुख से वंचित रहीं और श्रीमच्चैतन्य महाप्रभु के रूप में तो बहुत ही कठोर मर्यादा की स्थापना हुई। श्रीचैतन्य महाप्रभु स्त्री-दर्शन

तो दूर स्त्री शब्द भी मुख से न कहकर प्रकृति कहते थे, इसके विपरीत श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभु का चरित्र है। स्वयं भगवान् ने आचार्य चरण को विवाहाज्ञा दी और गोसाईं विट्ठलनाथजी के रूप में स्वयं भगवान् आये और उधर श्रीचैतन्य महाप्रभु भी भगवान् हैं और इधर गोसाईं विट्ठलनाथजी के रूप में भी स्वयं भगवान् हैं। चैतन्य महाप्रभु के रूप में स्त्री-त्याग की मर्यादा एवं पुष्टि मार्ग में स्वयं भगवान् के द्वारा स्त्री-ग्रहण की आज्ञा।

बहुधा वैराग्य के आडम्बर में लोग कहते हैं हम स्त्री दर्शन नहीं करते, हम स्त्री मुख से कथा नहीं सुनते.....आदि आदि।

फिर उदाहरण भी देते हैं - श्रीमच्चैतन्य महाप्रभु ने भी तो छोटे हरिदास के प्रति वृद्धा माधवी देवी से बात कर लेने पर कितनी कठोर मर्यादा स्थापित की किन्तु क्या भूल गये श्रीरायरामानन्द जी देव दासियों (ये वे अविवाहित कन्याएँ होती थीं जिन्हें बाल्यकाल से ही विषय वातावरण से दूर रखकर नृत्य-गान द्वारा भगवान् को रिझाने की शिक्षा दी जाती थी) को निभृत उद्यान में ले जाकर उनके प्रत्येक अंग पर अपने हाथ से हरिद्रा, तैलादि से मर्दन करते थे, यही नहीं अपने ही हाथों से उन्हें स्नान कराते, शरीर को पोंछते अनन्तर वस्त्राभूषण धारण कराते तथापि श्री राय रामानन्द जी का मन निर्विकार रहता।

स्वहस्ते करान तार अभ्यङ्ग मर्दन।
स्वहस्ते करान स्नान गात्र-सम्मार्जन।।
स्वहस्ते परान वस्त्र सर्वाङ्ग मण्डन।
तभु निर्विकार राय रामनन्देर मन।।
काष्ठ पाषाण स्पर्शे हय जैछै भाव।
तरुणी स्पर्शे रामरायेरऐछे स्वभाव।।

(चै. च. अन्त्यलीला ५/१५-१९)

उन देव कन्याओं को अपना सेव्य मानकर वह उनकी सेवा किया करते। वे कन्याएँ किशोरावस्था युक्त होती थीं। साक्षात् युवती नारी का स्पर्श तो दूर काष्ठ और पाषाण की स्त्री का स्पर्श ही बड़े-बड़े साधन सम्पन्न मुनियों के चित्त में विकारोत्पन्न कर देता है। यह तो केवल श्रीराय रामानन्द जैसे परम भागवत के लिए ही सम्भव था।

प्रतिदिन रायऐछे करये साधन।
कोन जाने छुद्र जीव काहाँ तार मन।।

यह श्री राय रामानन्द जी का दैनिक क्रम था, विषय विदूषित क्षुद्र जीव भला उनके मन की अवस्था को कैसे जान सकते हैं। स्वयं श्रीमन्महाप्रभुजी ने प्रद्युम्न मिश्र को कहा - 'मिश्र जी! रायरामानन्द जी की स्थिति व महिमा अनिर्वचनीय है।'

एके देवदासी आर सुन्दरी तरुणी।
तार सब अंग सेवा करेन आपनी।।
स्नानादि कराय, पराय वास-विभूषण।
गुह्य - अंगेर हय ताहा दर्शन - स्पर्शन।।
तभु निर्विकार रायरामानंदेर मन।।
नाना भावोद्गार तारे कराय शिक्षण।
निर्विकार देह - मन काष्ठ पाषाण सम।।
आश्चर्य तरुणी स्पर्शे निर्विकार मन।।

(चै.च.अन्त्य ५/३६-३९)

एक तो वे अविवाहित कन्याएं, उस पर वे परम सुन्दरी और फिर युवती जिनकी सर्वांग सेवा राय अपने हाथों से करते हैं, उन्हें स्नान कराते समय, पट-भूषण धारण कराते समय उनके मुख-वक्षस्थलादि गुह्य अंगों का दर्शन, स्पर्श भी स्वाभाविक है किन्तु इतने पर भी राय रामानन्द का मन पूर्णतः निर्विकार रहता है और फिर नाना प्रकार के हाव-भावपूर्ण नृत्य की उन्हें शिक्षा देते हैं किन्तु मन इस प्रकार निर्विकार रहता है कि मानो किसी काष्ठ अथवा पाषाण का ही स्पर्श किया हो। युवती के स्पर्श में मन का निर्विकार रहना परमाश्चर्य का विषय है।

इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभुजी ने श्रीप्रद्युम्नमिश्रजी को श्रीरायरामानन्दजी की महिमा कही। क्या श्री रायरामानन्द जी को महाप्रभु जी ने त्याग दिया?

इसी तरह रामचन्द्र खाँ ने जब श्रीहरिदास ठाकुर के समीप वेश्या को भेजा था तो वह वेश्या हरिदास जी के पास लगातार तीन दिन गई तो क्या हरिदास ठाकुर कुटिया छोड़कर भाग गए थे? नहीं, बल्कि उस वेश्या पर उन्होंने कृपा की और आगे चलकर वह वैष्णवी बन गयी, बड़े-बड़े चैतन्यानुयायी वैष्णव उस वेश्या के दर्शन करने जाते थे और अपने को कृतार्थ समझते थे -

प्रसिद्ध वैष्णवी हैला परम महान्त।
बड़-बड़ वैष्णव तांर दर्शनेते जानत॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत, अन्त्यलीला ३/१३४)

स्त्री नहीं, स्त्री संग (स्त्र्यासक्ति) है नरक का द्वार

अविवेकी लोग 'हमारे शास्त्रों में बहुत स्त्री निन्दा की गई' इस बात को आधार बनाकर स्त्रियों के प्रतिघृणा का भाव रखते हैं जबकि वह इस बात से अनभिज्ञ हैं कि हमारे ही शास्त्रों में स्त्रियों को जगदम्बा का रूप माना गया है -

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्ब यैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः।।

(दुर्गासप्तसती ११/६)

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाक्रियाः।।

(मनु स्मृति-३/५६)

शास्त्रों में स्त्री-निन्दा उनके प्रति हेय भाव रखकर नहीं अपितु उसका उद्देश्य स्त्री की आसक्ति से बचना था क्योंकि गुणाध्यास से आसक्ति हो जाती है -

विषयेषु गुणाध्यासात् पुंसः संगस्ततो भवेत्।

(श्रीमद्भागवत ११/२१/१९)

और दोषाध्यास से आसक्ति की निवृत्ति होती है -

जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्।।

(श्रीमद्भगवद्गीता १३/८)

अरे, निन्दा तो शास्त्रों में इस पाञ्चभौतिक शरीर की भी बहुत की गई परन्तु क्या कोई इस शरीर से घृणा करता है? नहीं, वहाँ देह निन्दा से तात्पर्य देहासक्ति निवृत्ति ही है।

श्रीकपिल भगवान् ने भी यही कहा -

सङ्गं न कुर्यात्प्रमदासु जातु योगस्य पारं परमारुरुक्षुः।
मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो वदन्ति या निरयद्वारमस्य।।

(श्रीमद्भागवत ३/३१/३९)

जो विवेकी पुरुष योग के परम पद पर आरूढ़ होना चाहता है, उसे स्त्रियों का संग अर्थात् स्त्रियों में आसक्ति कभी नहीं करनी चाहिए क्योंकि ऐसे पुरुषों के लिए स्त्री की आसक्ति नरक का खुला द्वार है।

यही श्रीऋषभ भगवान् ने कहा -

'तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम्।'

(श्रीमद्भागवत ५/५/२)

स्त्रीसंग से भी ज्यादा घातक स्त्रीसंगियों (स्त्रैण या कामियों) का संग है।

वस्तुतः न स्त्री, न पुरुष, संग (आसक्ति) ही नरक का मार्ग है। पुरुष के लिए स्त्री आसक्ति एवं स्त्री के लिए पुरुष के प्रति की गयी आसक्ति नरक का द्वार है।

स्त्री संग का त्याग आवश्यक है, इसलिए स्वयं भगवान् श्रीराम ने कृपणवत् वन-वनान्तर में विरहलीला की।

भ्रात्रा वने कृपणवत्प्रियया वियुक्तः।
स्त्रीसङ्गिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार।।

(श्रीमद्भागवत ९/१०/११)

संसार यह समझ ले कि स्त्री आसक्ति का परिणाम यही है, मैं ईश्वर होकर भी रो रहा हूँ।

जह्याद् यदर्थे स्वप्राणान्हन्याद् वा पितरं गुरुम्।
तस्यां स्वत्वं स्त्रियां जह्याद् यस्तेन ह्यजितो जितः।।

(श्रीमद्भागवत ७/१४/१२)

किन्तु स्त्रैण तो स्वप्राण तक दे देते हैं स्त्री के लिए, यही नहीं अपने माता-पिता और गुरू को भी समाप्त कर देते हैं।

इससे विपरीत जो स्त्री-जयी है, वह भगवद्-जयी है।

श्री हनुमान जी के वचन -

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य।।

(श्रीमद्भागवत ५/१९/५)

हे भगवन्! यह नरावतार मात्र असुर संहार के लिए नहीं हुआ है, इसका मूल उद्देश्य तो मनुष्यों को शिक्षा देना ही है। अन्यथा आत्माराम ईश्वर को अपनी अभिन्ना शक्ति सीता का इतना विरह हो सकता था भला।

अतः भगवान् कृष्ण ने अन्तिम उपदेश देते हुए उद्धव जी से यही कहा-

अथापि नोपसज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु चार्थवित्।

(श्रीमद्भागवत ११/२६/२२)

अपनी भलाई चाहने वाले विवेकी पुरुष को स्त्रियों और स्त्री-लम्पट पुरुषों का संग कभी नहीं करना चाहिए।

भागवत कथा वक्ता का यथार्थ स्वरूप

वर्तमान काल में बहुत से वक्ता कृष्ण-कथा कहते हैं किन्तु एषणाओं से युक्त होकर के - किसी को धन चाहिए, किसी को मान-सम्मान चाहिए, किसी को भोग पदार्थ चाहिए, इसीलिए ऐसे वक्ताओं से समाज का लाभ नहीं अपितु हानि ही है, जैसा कि शास्त्रों में स्पष्ट कहा गया है -

अवैष्णव मुखोद्गीर्णं पूतं हरिकथामृतम्।
श्रवणं नैव कर्तव्यं सर्पोच्छिष्टं यथा पयः।।

(पद्मपुराण)

यद्यपि दुग्ध अत्यन्त पवित्र वस्तु है, उसके पान करने से तुष्टि-पुष्टि प्राप्त होती है किन्तु ऐसा उत्कृष्ट दुग्ध भी सर्पोच्छिष्ट होने पर विष के रूप में परिणत होकर प्राणघातक सिद्ध हो जाता है। उसी प्रकार शुद्ध भक्त के मुख से निःसृत श्रीकृष्णकथामृत भवरोग को सर्वदा के लिए नष्ट कर देता है किन्तु अभक्त (अवैष्णव) के मुख से श्रवण भवरोगवर्द्धक ही सिद्ध होता है।

यही गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी का भी मत है कि वर्तमान समय में अनेकानेक धार्मिक आयोजन हो रहे हैं किन्तु वासनाओं के कारण वे सब तामस हो जाते हैं और उनसे लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है -

तामस धर्म करहिं नर जप तप ब्रत मख दान।
देव न बरषहिं धरनीं बए न जामहिं धान।।

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - १०१)

इसी प्रकार आज भागवत-कथाएँ तो जगह-जगह हो रही हैं किन्तु कणलोभ अर्थात् अन्न-धनादि के लोभ के कारण उनका सार चला गया।

विप्रैर्भागवती वार्ता गेहे गेहे जने जने।
कारिता कणलोभेन कथासारस्ततो गतः।।

(पद्मपुराणोक्त, श्रीमद्भागवत माहात्म्य १/७१)

सार क्या था ? कृष्ण-रस, कृष्ण-प्रेम, जो कि स्वयं वक्ताओं में दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है।

श्रीहरिराम व्यास जी के वचन -

कहत सुनत बहुतई दिन बीते भक्ति न मन में आई।

भागवत कथा कहते-सुनते जन्म बीत गया किन्तु आजतक भक्ति हृदय में नहीं आई।

श्रीबिहारिन देव जी के वचन -

भक्ति बिना भागवतै कहै। कंठै सोखैं काया दहै॥
कहत सुनत तन बूढ़ौ भयौ। मन आसा तृष्णा नित नयौ॥
लोभ छोभ आड़ो ह्वै रह्यौ। श्रीबिहारीदास जस कह्यौ न कह्यौ॥

इसीलिये कथाओं का समाज पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है क्योंकि जब तक भागवत वक्ता के हृदय में धन-सम्पत्ति, मान-प्रतिष्ठादि की वासनाएँ हैं, तब तक उसके मुख से वासना मिश्रित वाणी ही निकलेगी और उस वासना मिश्रित वाणी से श्रोताओं का प्रभु की ओर प्रवाह नहीं होगा बल्कि उनकी हृदयगत वासनाएँ ही पुष्ट होंगी। इसीलिये तो श्रीपृथु भगवान् ने कहा था कि -

स उत्तमश्लोक महन्मुखच्युतो भवत्पदाम्भोजसुधा कणानिलः।
स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्त्ववर्त्मनां कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः।।

(श्रीमद्भागवत ४/२०/२५)

जिन महापुरुषों का चित्त सर्वथा निर्वासनिक है उनके मुख से कृष्ण-कथा श्रवण करना चाहिए क्योंकि भगवान् के चरणकमल मकरन्द रूपी अमृत-कणों को लेकर उनके मुख से जो वायु निकलती है, उसी में इतनी शक्ति होती है कि वह तत्त्व को भूले हुए कुयोगियों को पुनः तत्त्वज्ञान करा देती है।

रसिक जनों ने भी कहा है -

प्रथम सुने भागवत भक्त मुख भगवद् वानी।

(श्रीभगवतरसिक जी)

'भागवत कथा भक्त-मुख से ही सुननी चाहिए।'

जाके मन बसै काम-कामिनी धन।
ताकैं स्वप्नै हूँ नहिं सम्भव आनंदकंद स्यामघन।।

(श्रीव्यासवाणी)

मान-सम्मान, भोगैश्वर्य के इच्छुक वक्ता के मन में स्वप्न में भी कृष्ण नहीं आयेंगे चाहे वह कितनी ही कथाएँ क्यों न कह ले और न ही वह श्रोताओं के चित्त में कृष्ण को प्रतिष्ठापित कर पायेगा।

अपहतसकलैषणामलात्मन्यविरतमेधितभावनोपहूतः।
निजजनवशगत्वमात्मनोऽयन्न सरति छिद्रवदक्षरः सतां हि।।

(श्रीमद्भागवत ४/३१/२०)

जब अन्तःकरण से समस्त एषणायें चली जाएँगी। तब उस हृदय को कृष्ण अपना मंदिर बनाते हैं। फिर वहाँ से कभी नहीं जाते हैं।

इस बात को गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी लिखा है -

छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी। एक लालसा उर अति बाढ़ी।।

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - ११०)

जब ऐषणायें चली जाएँगी तब भगवत्प्राप्ति की उत्कण्ठा (लालसा) बढ़ेगी। जब तक ऐषणायें बनी हुयी हैं तो कथा-व्यास, धर्माचार्य बनकर भी तिकड़म लगाओगे, कैसे पैसा आये? कैसे हमारा प्रचार-प्रसार बढे?

आज अधिकांश लोग कथा क्यों कहते हैं? क्योंकि कथा कहने में बड़ा फायदा है। लड्डू-पेड़ा, मान-सम्मान, पैसा मिलेगा।

अतः जिनके हृदय में वासनाएँ भरी पड़ी हैं, वह चाहे कितना भी अच्छा प्रवचन करे उससे श्रोताओं का मंगल नहीं होगा। अरे, श्रोताओं को तो छोड़ो वह अपना ही कल्याण नहीं कर पायेगा।

सभी पूर्वाचार्यो ने यही कहा है -

श्रीकबीरदास जी ने कहा कि एषणाओं के गये बिना, मन को श्रीकृष्ण में रंगाये बिना, चाहे वेश बदल लो, लाल-पीला कैसा भी वस्त्र धारण कर लो, चाहे कितनी भी अच्छी कथा कहो, गीता-भागवत पर प्रवचन करो, तुम्हारा कल्याण नहीं होगा -

मन न रंगाये रंगाये जोगी कपड़ा।
कनवा फड़ैले बाला लटकैले दढ़िया बढ़ैले जोगी होइ गये बकरा॥
माथा मुड़ैले कपड़ा रंगैले गीता बांच जोगी होइ गैले लफड़ा।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो जम तर बचबा बधिक जैहे पकड़ा॥

अथवा

पांड़े भली कथा कहि जानें।
औरन परमारथ उपदेशे, आप स्वार्थ लपटानें।।
ज्यों दीपकघर करत उजेरो, निज तन तम सन ठानें।।
महिषी क्षीर स्रवे औरन को, आप भुसहिं रूचि मानें।।
श्रोता गोता क्यों न खावें, आचार्य फिरै भुलानें।।
हित की कहत लगत अनहित की, रज राजस में सानें।।
कहत कबीर बिना रघुबीरहिं, यह पीरहिं को जानै।।

श्रीकबीरदास जी ने यह केवल कहा ही नहीं बल्कि करके भी दिखाया। उनका पुत्र कमाल कहीं कथा कहने गया था, कथा पूर्ण होने के बाद जब वह वहाँ से लौटा तो यद्यपि उसकी इच्छा नहीं थी फिर भी वहाँ के श्रद्धालु भक्तों ने कुछ धन-सामग्री एक पोटरी में बाँध ाकर जबरदस्ती कमाल को दे दी, जब वह उसे घर लाया तो कबीरदास जी ने देखा और उसे फटकारते हुए बोले -

डूबा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल।
हरि का सुमिरण छांड़के बाँध के लाया माल।।

श्रीभगवद् रसिक जी ने भी यही कहा -

वेषधारी हरि के उर सालै।
कबहुँक बक्ता ह्वै बनि बैठै कथा भागवत भावै।
अर्थ अनर्थ कछू नहिं भासै पैसन ही को धावै।।

अरे, महात्माओं ने तो यहाँ तक कह दिया कि वह भागवत व्यास नहीं अपितु कुत्ता है, जिसकी कथनी-करनी में भिन्नता है और वह निश्चित यमपुर जाएगा -

करनी बिन कथनी कथै अज्ञानी दिन-रात।
कूकर सम भूकत फिरै सुनी सुनाई बात।।

अथवा

जैसी मुख ते नीकसे तैसी चालै नाहिं।
मनुष्य नहीं वे श्वान गति बांधे जमपुर जांहि।।

महाराष्ट्र के महान संत श्रीएकनाथ जी ने कहा कि धन के लिए जो कथा कहता है, उसे व्यास नहीं चाण्डाल समझना चाहिए -

द्रव्यचिये आशे करी जो कथा।
चांडालं तत्त्वतां जाणावा तो॥

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य जी के वचन -

पठनीयं प्रयत्नेन सर्वहेतुविवर्जितं
वृत्यर्थं नैव युञ्जीत प्राणैः कंठगतैरपि।

(तत्वार्थदीपनिबन्ध २/२५३)

धनादि समस्त हेतुओं को छोड़कर प्रयत्नपूर्वक श्रीमद्भागवत का पाठन-वाचन करना चाहिए परन्तु प्राण कंठगत् हों जाने पर भी भागवत कथा को अपनी जीविका का साधन नहीं बनाना चाहिए।

श्रीमद्भागवत में भी यही कहा गया कि 'अतिनिःस्पृह' वक्ता ही वक्ता है, जिसे आजीविका पूर्ति की भी स्पृहा नहीं है।

किन्तु आज की स्थिति यह है, श्रीप्रह्लाद जी कह रहे हैं -

मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म
व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः।

प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां
वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम्।।

(श्रीमद्भागवत ७/९/४६)

मौन, ब्रह्मचर्य, शास्त्र-श्रवण, तपस्या, स्वाध्याय, स्वधर्मपालन, शास्त्रों की व्याख्या, एकान्तसेवन, जप और समाधि - यह जो मोक्ष के दस साधन प्रसिद्ध थे, अजितेन्द्रिय लोगों ने इन सबको जीवन निर्वाह का साधन-व्यापार मात्र बना लिया।

अस्तु इन व्यापारियों से सावधान रहने के लिए ही श्रीमद्भागवत में 'भागवत वक्ता' के लक्षणों का निरूपण किया गया -

भगवन्मतिरनपेक्षः सुहृदो दीनेषु सानुकम्पो यः।
बहुधा बोधनचतुरो वक्ता सम्मानितो मुनिभिः॥

(श्रीमद्भागवत स्कन्दपुराणोक्त माहात्म्य ४/२२)

विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्रविशुद्धिकृत्।
दृष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता कार्योऽतिनिःस्पृह॥

(श्रीमद्भागवत पद्मपुराणोक्त माहात्म्य ४/२२)

चाहे वक्ता हो या वक्त्री दोनों में ही ये लक्षण होना अनिवार्य हैं, अगर यह लक्षण नहीं हैं तो वह भागवत कथा कहने का अधिकारी नहीं है, 'त्याज्यास्ते यदि पण्डिताः' अगर वेदज्ञ ब्राह्मण भी है, तब भी लक्षणों से रहित होने पर वह भी त्याज्य है।

भागवत वक्ता के लक्षण -

भगवन्मति (भगवान् में मन वाला हो)
अनपेक्षः (जिसे किसी भी वस्तु की अपेक्षा न हो)
सुहृदः (समस्त प्राणियों का निर्हैतुक हितैषी हो)
दीनेषु सानुकम्पः (दीनों पर दया करने वाला हो)
बहुधा बोधनचतुरः (तत्त्व का बोध करा देने में चतुर हो)
विरक्तः (विरक्त अर्थात् विषयों में राग रहित हो)
वैष्णवः (वैष्णव अर्थात् भगवद्भक्त हो)
विप्रः (ब्राह्मण हो)
वेदशास्त्रविशुद्धिकृत् (वेद-शास्त्र की स्पष्ट व्याख्या करने में समर्थ हो)
दृष्टान्तकुशलः (दृष्टान्त कुशल हो)
धीरः (धैर्यवान् हो)
अतिनिःस्पृह (देह-निर्वाह की आवश्यकता-पूर्ति की भी स्पृहा से रहित हो)

यद्यपि उपर्युक्त सभी लक्षण वक्ता में होना चाहिए किन्तु विशेष रूप से वक्ता को अतिनिःस्पृह होना चाहिए अर्थात् जिसे धन-प्रतिष्ठादि किसी भी वस्तु की स्पृहा न हो, ऐसा वक्ता ही संसार का कल्याण कर सकता है।

श्रीबिहारिनदेव जी ने कहा -

सात द्यौस निस्पृह शुक गायौ। राजा सुनि संदेह नसायौ।।

यही श्रीपृथु जी ने कहा कि संसार का कल्याण कौन कर सकता है, जो श्रीभगवान् के गुणानुवाद के रहते इस निन्दित शरीर का मान-सम्मान नहीं चाहता है।

सत्युत्तमश्लोकगुणानुवादे जुगुप्सितं न स्तवयन्ति सभ्याः।

(श्रीमद्भागवत ४/१५/२३)

जिसके अन्दर स्पृहायें हैं, वह चाहे कितना भी अच्छा भाषण करे, केवल टेप रिकार्डर की तरह बजता रहेगा, उससे समाज का कोई हित नहीं होगा। इसलिए सच्चा व्यास कौन है -

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरन्तर तासु मन सो राउर निज गेहु।।

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड - १३१)

जो अतिनिःस्पृह है अर्थात् जिसको कुछ नहीं चाहिए, कोई इच्छा नहीं, कोई वासना नहीं, उसके हृदय में निरन्तर भगवान् का निवास रहता है, उससे कथा सुनो तब कल्याण होगा।

वक्ता सोइ जानिये, जाकैं लोभ न काम।

अन्यथा गाने वाले कलाकार भी कई लाख रुपये लेते हैं, क्या उनके गाने से कृष्ण मिल जाएँगे? तुलसी, सूर, मीरा आदि महापुरुष हुए, उन्होंने जो गाया उसको अभी भी लोग गाते हैं। उससे लोगों को रस मिलता है क्योंकि उनके हृदय में ऐषणायें नहीं थीं। इसीलिये कथा उसी से सुनो जो 'अतिनिःस्पृह' हो, जिसे शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति की भी कामना नहीं हो।

यद्यपि ऐसे व्यास बहुत कम ही मिलते हैं, अगर अतिनिःस्पृह कोई मिल जाए और उसके एक लव का भी सत्संग मिल जाये तो इतने से तुम्हें भक्ति मिल जायेगी -

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।।

(श्रीरामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड - ४)

यही कारण है आज अनेकों (हजारों) वक्ता घूम रहे हैं लेकिन कहीं भी प्रेम रस का संचार नहीं है।

भागवत के नाम पर गद्दी पर वक्ता लोग बैठ जाते हैं और चुटकुले कहते हैं, कृष्णरस को हास्यरस बना लेते हैं, इसलिए वह गम्भीरता नहीं रहती, जैसे ब्रह्मा जी कहते हैं -

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्।।

(श्रीमद्भागवत १०/१४/३२)

अरे! इन ब्रजवासियों का सौभाग्य तो देखो, सनातन सच्चिदानन्द ब्रह्म इनका मित्र बन गया।

इस गहराई में घुसकर नहीं बोलते हैं, इस गहराई में घुसकर बोलो - पूर्णकाम, आप्तकाम भगवान् गोपियों के प्रेमवश होकर नाच रहा है। नहीं तो एक सिनेमा का कलाकार भी हमसे अच्छा गाता है, बोलता है लेकिन कलाकार के हृदय में भक्ति रस नहीं रहता। वह कला को प्रस्तुत कर रहा है लेकिन उसके हृदय में एषणायें हैं। जहाँ एषणायें हैं वहाँ रस कहाँ से आयेगा, इसीलिए रूप गोस्वामी जी ने भक्तिरसामृतसिन्धु में भक्ति की परिभाषा में यही लिखा -

अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनाव्रतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

(भक्तिरसामृतसिन्धु)

अगर कृष्णरस, कृष्णप्रेम, कृष्णभक्ति चाहिए तो पहले समस्त अभिलाषाओं से शून्य हो जाओ और दिन-रात कृष्ण में मन, इन्द्रियाँ लगी रहें। भगवान् में स्वाभाविक प्रवृत्ति होना ही भक्ति है। कपिल

भगवान् ने कहा -

देवानां गुणलिङ्गानामानुश्रविककर्मणाम्।
सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या।।

(श्रीमद्भागवत ३/२५/३२)

अतः कृष्ण चरित्र कहना बहुत कठिन है, जब हृदय में रस हो, भक्ति हो, तभी कृष्ण चरित्र कहने का अधिकार है। यह एक दुर्लभ ही नहीं दुर्लभतम वस्तु है।

अनेकधर्मनिभ्रान्ताः स्त्रैणाः पाखण्डवादिनः।
शुकशास्त्रकथोच्चारे त्याज्यास्ते यदि पण्डिताः।।

(पद्मपुराणोक्त, श्रीमद्भागवत माहात्म्य ६/२१)

इसीलिये 'अनेकधर्मविभ्रान्त अर्थात् भागवत धर्म को छोड़कर लौकिक-वैदिक धर्मों में भटके हुए, स्त्रैण अर्थात् स्त्रीलम्पट और पाखण्डवादी अर्थात् पाखण्ड के प्रचारक' इन लोगों को भागवत कथा कहने का निषेध किया गया है, चाहे कोई पण्डित ही क्यों न हो, वह भी त्याज्य है। ऐसे लोगों को श्रीमद्भागवत के प्रवचन में नियुक्त नहीं करना चाहिए।

भागवत व्यास तो छोड़ो अगर गुरु भी ऐसा है तो शास्त्रों में वह भी त्याज्य बताया गया है -

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते।।

(महाभारत, उद्योगपर्व १७९/२५)

'भोग-विषयों में लिप्त, कर्तव्याकर्तव्य विवेकरहित मूढ़ एवं शुद्ध भक्ति रहित भिन्न पन्थानुगामी व्यक्ति नाम-मात्र का गुरु है। उसका परित्याग करना ही विधि है।'

भक्तिहीन पुरुषों को तो भागवत में अधिकार नहीं है किन्तु ऐसे ही लोग **"मन क्रम बचन लबार तेहि वक्ता कलिकाल महँ॥"** आजकल वक्ता बनकर संकीर्णता का प्रसार कर रहे हैं जबकि भगवान् वेद व्यास ने वैदिक संकीर्णताओं के उन्मूलन हेतु भागवत-धर्म का प्राकट्य किया।

आज बहुत से अनेकधर्मविभ्रान्त वक्ता घूम रहे हैं, जिन्हें भागवत धर्म का कोई ज्ञान नहीं है, इसीलिये तो वह श्रौत-स्मार्त धर्म के आधार पर स्त्रियों के कथा कहने का विरोध करते हैं जबकि भागवत धर्म में न वर्णाश्रम भेद है और न ही लिंग भेद। इसीलिए तो महाप्रभु जी कहा करते थे -

किवा विप्र, किवा न्यासी, शूद्र केने नय।
जेई कृष्णतत्त्ववेत्ता, सेई गुरु हय।।

(चै.च.मध्य- ८/१२७)

किवा वर्णी, किवा श्रमी, किवा वर्णाश्रमहीन।
कृष्णतत्त्ववेत्ता जेई, सेई आचार्य प्रवीण॥

(प्रेमविवर्त्त)

मूल बात है कि उपरोक्त लक्षण गुरु या वक्ता में घटित होना चाहिए। यह जिसमें घटित नहीं होते हैं 'त्याज्यास्ते यदि पण्डिताः' वह त्याज्य है। अगर किसी स्त्री वक्ती में यह घटित होते हैं तो वह निश्चित रूप आदरणीय व पूज्यनीय है अतः कथा कहने स्त्री को तो अधिकार है किन्तु स्त्रैण को नहीं क्योंकि एक सिद्धान्त है -

तीर्णास्तारयन्ति, स्वयं तीर्णः परांस्तारयति

किन्तु जो - **'स्वयं तरितुमक्षमः कथमसौ परांस्तारयेत्।।'**

स्त्रैण कौन? स्त्रैण अर्थात् स्त्री लम्पट।

किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा।
किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम्।।

(श्रीमद्भागवत ११/२६/१२)

स्त्री के द्वारा जिसका मन चुरा लिया गया है, उसकी सब विद्या व्यर्थ है। तप, त्याग, शास्त्राभ्यास, एकान्तसेवन और मौन से भी उसे कोई लाभ नहीं होगा।

आज स्त्रैण-वक्ताओं से समाज ही नहीं, सम्पूर्ण राष्ट्र खोखला हो गया। इसीलिए भगवान् ने इनसे सावधान होने को कहा है -

सङ्गं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित्।
तस्यानुगस्तमस्यन्धे पतत्यन्धानुगान्धवत्।।

(श्रीमद्भागवत ११/२६/३)

सभी को चाहिए कि वे शिश्नोदरपोषी असत्पुरुषों के संग से सर्वदा दूर रहें अन्यथा उनका अनुगमन करने से वैसी ही दुर्दशा होगी जैसी एक अन्धे की दूसरे अन्धे को पकड़कर चलने पर होती है।

आधुनिक-स्त्रैण (स्त्री-लम्पट) वक्ताओं की स्थिति किसी वधिक को बचाने वाले वकील की भाँति हैं, जो शास्त्रीय-सिद्धान्तों का, महद्वाणियों का दुरुपयोग करते हैं। स्वदोष को छिपाने के लिए उदाहरण देते हैं -

"सोई करतूत विभीषण केरी" विभीषण ने भी तो रावण की मृत्यु के बाद मंदोदरी को भोग्या के रूप में स्वीकार किया।

भगवान् घोर विषयी को भी स्वीकार कर लेते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं कि भगवान् उनके दोषों पर ध्यान नहीं देते किन्तु सुग्रीव और विभीषण जैसी स्थिति भी तो होनी चाहिए।

सिद्धान्तों को भ्रामक न बनायें!

दस-बीस शिष्य बनाकर स्वयं को महापुरुष समझने वाले ही प्रायः इन सिद्धान्तों की पुष्टि करते हैं कि महापुरुष सर्वसमर्थ हैं। वे उचित-अनुचित सभी कार्य कर सकते हैं। वस्तुतः स्वयं को महापुरुष समझने वाले लोग पाखण्डी, दाम्भिक, अधार्मिक ही हैं।

अरे, सूर-तुलसी जैसे जगदुद्धारक महापुरुष ने क्या कभी अपने आपको महापुरुष माना, नहीं। वे तो सदैव यही कहते रहे -

मो सम कौन कुटिल खल कामी।

श्री भगवान् के ब्रजकुमारिकाओं के प्रति वचन -

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते।।

(श्रीमद्भागवत १०/२२/२६)

हे कुमारिकाओं! जिन्होंने अपने मन व प्राण को मुझे अर्पित कर दिया है, उनमें संसारी कामनाओं का जन्म ही नहीं होगा, ठीक उसी प्रकार जैसे भुने या उबले हुए बीज में अंकुर नहीं उगता है।

चाहे स्त्री हो या पुरुष, जो भगवान् की आज्ञानुसार -

मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च।

(श्रीमद्भागवत ११/१९/२३)

धन, भोग और सभी प्रकार के सुखों का परित्याग करके

कृष्ण-कथा का गान करते हैं तो जो उसका विरोध करते हैं, महापुरुषों के शब्दों में वे दई मारे हैं -

निस्प्रेही उपकारी सहज, हरि जस कौ दिन दाँनि।
श्रीबिहारीदास सों जे अरैं, ते दई मारे जानि।।

(श्रीबिहारिन देव जी)

आज क्यों देखा जाता है बड़े-बड़े वक्ताओं में लोभ क्योंकि उनकी वृत्ति कृष्ण विषयिणी नहीं अपितु धन विषयिणी है

रूपं दृश्यं लोचनं दृक् तद्दृश्यं दृक्तु मानसम्।
दृश्या धीवृत्तयः साक्षी दृगेव न तु दृश्यते।।

(भारतीतीर्थ स्वामी कृत, दृग्दृश्यविवेक)

रूप दृश्य है व नेत्र द्रष्टा, नेत्र दृश्य है तो मन द्रष्टा, मन भी दृश्य है तो बुद्धि द्रष्टा और बुद्धि भी दृश्य है तब वृत्ति द्रष्टा है। वृत्ति के अनुसार ही संसार का दर्शन होता है।

'वृत्तिसारूप्यमितरत्र' वृत्ति के सारूप्य से ही हमें संसार का ज्ञान होता है। विषयणी-वृत्ति विषयों में प्रवृत्त करायेगी तब किसी का रूप अच्छा लगेगा तो कभी लड्डू अच्छा लगेगा।

धर्म को व्यापार बनाकर आज कथाओं के स्थान पर विषपान् कराया जा रहा है। ऐसे लोग निश्चित ही धर्माचार्य न होकर धर्महासाचार्य हैं जिनके द्वारा राष्ट्र ही नहीं समग्र विश्व क्षति को प्राप्त हो रहा है।

वर्तमान युग को धर्म-रक्षार्थ सांस्कृतिक-क्रान्ति की आवश्यकता है। इसके लिए "स्त्री को कथा-कथन का अधिकार नहीं" इस प्रकार के संकीर्ण विचारों को छोड़ना होगा। प्रयास करें कि स्त्रैण-पुरुष कथा न कहें।

वक्ता ऐसा हो जो अपरिग्रह की परम्परा में पुनः प्राण भरे।

भूलो मत, यह देश उन त्यागी, अपरिग्रही सन्तों की जन्मभूमि रहा है जिन्हें स्वप्राणों का भी मोह न था किन्तु आज यह जानकर आश्चर्य होगा कि सम्पूर्ण विश्व में जितना धन ८५ लोगों के पास है उसका आधा सम्पूर्ण संसार में है। आज धर्म के द्वारा व्यापार करने वाले लोग भूल गये कि एक प्रचारक स्वामी विवेकानन्द भी थे जो बिना ही द्रव्य के सम्पूर्ण विश्वभर में प्रचार हेतु घूमते रहे।

अन्तिम उपसंहार -

वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा।

(श्रीमद्भागवत २/६७)

वेद-उपनिषद वृक्ष ठहरे और श्रीमद्भागवत गलित मधुर फल।

फल की मधुरता, उपयोगिता को वृक्ष कभी प्राप्त नहीं कर सकता है। इसी कारण कहीं-कहीं स्मृतियों से विरोध भी देखा गया है। स्वयं श्री भगवान् ने किया -

यथा स्मृति-ग्रन्थों में समुद्र यात्रा का निषेध किया गया है किन्तु भगवान् श्रीरामने समुद्र पार सेतु निर्माण कर समुद्र यात्रा की एवं भगवान् श्रीकृष्ण ने तो समुद्र में ही द्वारका का निर्माण कराके निवास किया।

देश, काल परिस्थितियों के अनुसार स्वयं भगवान् ने भी स्मार्त-मर्यादा को स्वीकार नहीं किया । यदि स्मार्त मर्यादा को मानकर सेतु निर्माण कर समुद्र यात्रा न करते तो पापिष्ठ रावण का वध कैसे होता? भगवान् श्रीकृष्ण यदि द्वारका का निर्माण करा समुद्र-निवास न करते तो दुष्ट कालयवन का वध कैसे होता? अतः धर्म को प्रधान रखते हुए , स्मार्त मर्यादा के विरुद्ध आचरण करते हुए भी भगवान् को देखा गया है।

भारत के कट्टर स्मार्त लोग समुद्र पार करके देशान्तरों में सनातन धर्म का प्रचार करने नहीं गये अतः निरन्तर धर्म का संकुचन ही होता रहा। इसके विपरीत बौद्धों के द्वारा विदेशों में बौद्ध धर्म का व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार हुआ। परिणाम में थाइलैण्ड, बर्मा आदि सम्पूर्ण मध्य एशिया बौद्ध धर्मावलम्बी हो गया।

कोई समय था, जब एक सनातन धर्म ही समग्र विश्व में था। हमारे पौराणिक इतिहास के अनुसार सातों द्वीप सनातनी थे।

श्रीमद्भागवत के अनुसार -

अम्बरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम्।

(श्रीमद्भागवत ९/४/१५)

सूर्यवंशी महाराज अम्बरीष सातों द्वीपों के सम्राट थे। जो परम कृष्ण भक्त थे (महाराज अम्बरीष की अनन्य कृष्णभक्ति ९/४/१८-२१ में दृष्टव्य है) अम्बरीष जी की ही भाँति उनकी सम्पूर्ण प्रजा (सप्तद्वीपों की प्रजा) भी उत्तमश्लोक भगवान् श्री हरि की कथा प्रेम से श्रवण करती तो कभी गान करती, इसके अतिरिक्त प्रजाजनों को स्वर्ग की भी कोई इच्छा नहीं थी।

मध्य एशिया में बौद्ध धर्म के प्रचार से हानि यह हुई कि अहिंसा प्रधान बौद्ध धर्मावलंबियों पर अपनी क्रूरता, कट्टरता, हिंसा प्रधान वृत्ति के लिए कुख्यात यवनों ने धर्मान्तरण कराके उन्हें यवन बना डाला।

भारत में क्या-क्या कहर बरसाया गया था।

क्रूरकर्मा फिरोजशाह तुगलक के समय में हिन्दू पुजारी व प्रचारकों को जीवित ही आग में फेंक दिया जाता था। बाबर का पूर्वज तैमूर लंग तो ९० हजार सैनिक लेकर मेरठ, हरिद्वार, शिवालिक, नगरकोट व जम्मू तक मन्दिरों-मूर्तियों का भंजन व इस्लाम न स्वीकार करने वाले हिन्दुओं का कत्लेआम करता रहा।

बुद्धदेव नामक हिन्दू धर्म प्रचारक का मस्तक धड़ से अलग कर दिया था। सिक्खों के पंचम गुरू श्री अर्जुनदेव को क्या कम अमानुषिक यातनाएं दी गयीं, धधकते अंगारों पर बिठाया गया, ऊपर से जलती हुई बालू बरसाई गई, इतना ही नहीं, गाय की ताजी खाल खींचकर उसमें लपेटकर सिलने का उपक्रम भी किया गया और नवम गुरू श्री त्यागराय (तेग बहादुर) पर क्रूर मुगल औरंगजेब के अत्याचार आज भी हृदय में प्रतिकार की ज्वाला को भड़का देते हैं। लोहे के गर्म खंबे से चिपकाया जाना, जलती हुई बालू बरसाना और अन्त में धड़ से मस्तक अलग कर दिया जाना, क्या यह मनुष्यों का कार्य हो सकता है? दशम गुरू गोविन्द सिंह के दो पुत्र जोरावरसिंह व फतेह सिंह को इस्लाम धर्म स्वीकार न करने पर जीवित ही दीवार में चिन दिया गया। कहाँ तक करें इन क्रूरों की असच्चर्चा, भारत भूमि के तो बलिदानियों की नामावली से ही एक नया ग्रन्थ बन सकता है।

बौद्धों पर भी इन नरपिशाचों का कहर कुछ कम नहीं था। अभी

कुछ समय पूर्व ही बामियान, मध्य एशिया में संसार की सबसे विशाल बुद्ध मूर्ति को तोड़ा गया और धर्मान्तरण की परम्परा तो अब तक जीवन्त है।

संकीर्णताओं ने इतना दुर्बल कर दिया हिन्दू समाज को कि कश्मीर के महाराज ने घोषणा की, जिन हिन्दुओं का बलात् धर्मान्तरण करा मुसलमान बनाया गया है, वे पुनः हिन्दू धर्म स्वीकार कर सकते हैं किन्तु इस पर काशी के विद्वत्समाज ने ही विद्रोह खड़ा कर दिया कि अब उन्हें स्वीकार नहीं किया जायेगा। ऐसे वेदज्ञान से बहुत बड़ी हानि हुई इस राष्ट्र व धर्म की।

भूल गये अपने ऋषियों का आचरण -

सरस्वत्यज्ञया कण्वो मिश्र देशमुपाययो।
म्लेच्छान् संस्कृत्यं चाभाष्य तदा दश सहस्रकम्।।

(भविष्यपुराण ४/२१/१६)

सरस्वती की आज्ञा से महर्षि कण्व मिस्र देश गये और वहाँ दस हजार म्लेच्छों को उन्होंने सुसंस्कृत बनाया। जो शुद्ध व पवित्र होकर भारत लौटना चाहते थे उन्हें पुनः स्वीकार कर लिया गया।

महाराष्ट्र के 'चित्पावन ब्राह्मण' आज महान वेदज्ञ माने जाते हैं, जो वंशानुगत यहूदी और मिस्र देश के आसपास से आये हुए हैं। इसी प्रकार ईरानी, शक, हूण, मग एवं यहूदी आदि अनेक जातियों ने हिन्दू संस्कृति को अपनाया और उन्हें ऋषियों द्वारा स्वीकार किया गया।

लेखक का अभिप्राय किसी व्यक्ति, समाज, जाति, वर्ग के खण्डन या मण्डन का नहीं अपितु भक्ति के माहात्म्य का प्रतिपादन करना एवं भगवद् गुणों का औदार्य कथन एवं तत्सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना है न कि स्त्री, वैश्य, शूद्र अथवा कोई जाति विशेष की महिमा मंडित करना क्योंकि भगवान् स्वयं गो, ब्राह्मण आदि के उपासक हैं।

जीव की यह दुर्दशा है कि वह अपने मनमाने सिद्धान्त को सर्वोपरि मानकर किन्तु, परन्तु, क्यों, कैसे आदि की विषमताओं में विवेक शून्य हो जाता है। हम भगवान् की कृपा का आदर करते हुए उनके द्वारा प्रदत्त मनुष्य शरीर से केवल उनकी प्राप्ति का ही मार्ग अपनाएँ, इसी दृष्टिकोण से बिना किसी भेदभाव से शास्त्र सम्मत सिद्धान्तों के कथन का ही प्रयास किया गया है।

स्त्री, वैश्य, शूद्र को भी परागति की प्राप्ति होने का उल्लेख समस्त सद्-ग्रन्थों अथवा महापुरुषों की वाणियों एवं उनकी क्रियात्मक जीवन शैली तथा उनके अनुभवों से सुस्पष्ट है। यही कारण है आप सबका जीवन भी आत्मकल्याण के जिज्ञासु साधकों के लिए अवलम्ब बनता रहा है।

वाल्मीकि जी, रैदास जी, कबीरदास जी, रसखान जी, रहीम जी आदि ने भगवत् प्राप्ति के साथ-साथ भगवद् भक्ति की पतित पावनी रसधारा से समस्त लोक को सिंचित किया है।

एक वेश्या जो निंदनीय कर्म के द्वारा घृणा की दृष्टि से देखी जाती है उसमें भी यदि वह रजो धर्म से प्रभावित हो तो चाण्डालिनी के रूप में मानी जाती है। उसके चरित्र को भी नाभा जी ने बड़ी श्रद्धा के साथ गाया है यही नहीं उसकी उस दूषित अवस्था में स्वयं भगवान् ने उसके हाथों से स्वर्ण हार पहनने के लिए मूर्ति रूप से अपना सिर झुका दिया था। भगवान् जिसको अपनाते हैं उसकी आलोचना फिर चाहे सारा जगत करे, वहाँ फिर किसी की आलोचना का महत्व क्या?

यद्यपि श्री प्रह्लाद जी ने उपरोक्त का समाधान श्री मद्भागवत जी में पूर्व में ही स्पष्ट कर दिया है।

कहते हैं कि बारह गुणों से युक्त ब्राह्मण स्वयं अपने आपको भी पवित्र नहीं कर सकता यदि वह अहंता आदि दुर्गुणों से युक्त है। वहीं एक शूद्र या चाण्डाल स्वयं का ही नहीं अपितु अपने समस्त वंश को पावन बना देता है, यदि उसका समर्पण सच्चा है। समर्पण की सच्चाई मन, वाणी और सभी कर्मो के द्वारा होनी चाहिए। स्त्री, पुत्र, धन, वैभव, प्राण आदि सब कुछ समर्पित हो वही वास्तव में समर्पण है। भक्तिहीन ब्रह्मा जी भी प्रशंसनीय नहीं हैं फिर साधारण आदमी की तो बात ही क्या।

भगति हीन बिरंचि किन होई।
सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई॥
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी।
मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड-८६)

पुरूष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड-८७)

बात समर्पण भाव की है, भक्ति की है। यदि भक्ति और भाव है तो उस प्राणी का सर्वत्र अधिकार है।

आज घर-घर में कथावाचक तैयार हो रहे हैं जिसमें स्त्रियाँ भी बड़ी संख्या में अग्रसर हो रही हैं। सभी जाति वर्ग के लोग भागवत व्यास बनने को आतुर हैं और लोगों का मार्ग दर्शन भी कर ही रहे हैं परन्तु क्या वास्तव में मार्ग दर्शन हो रहा है?

भागवत वक्ता कैसा होना चाहिए, यह शुकदेव जी के व्यासत्व से स्वतः सिद्ध हो गया है कि शुकदेव जी जैसे नग्न व रिक्त हस्त आये थे कथा के बाद वैसे ही चले गए। क्या उस तरह की योग्यता हममें दिखाई देती है। नहीं तो ..... आत्मचिंतन करके देख लें।

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः॥
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥

(श्रीमद्भागवत १/२/८,९)

चिन्तनोपरान्त हम यही पायेंगे कि हमारा वह जीवन पूर्णतया खोखला ही है। जरा-सी दक्षिणा कम मिलती है तो हमारा मुख मलिन हो जाता है। कई बार तो मंच पर ही भेंट का वाद-विवाद लोगों में परिहास का कारण भी बन जाता है।

इस तरह के कथाकार बनकर क्या हम कृष्णाराधक बन पायेंगे?

भक्ति की कसौटी पर खरा उतरने वाला प्राणी चाहे वह कोई भी है, वह जगत्पूज्य है।

.....जय श्री राधे.....